खण्ड 4
सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 16 सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक (भाग–1): भरत, भामह, वामन, दण्डी, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 भरत

16.3 भामह

16.4 वामन

16.5 दण्डी

16.6 आनन्दवर्धन

16.7 अभिनवगुप्त

16.8 सारांश

16.9 शब्दावली

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.11 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- सौन्दर्यशास्त्रीय विचारक आचार्य भरत, भामह, वामन, दण्डी, आनन्दवर्धन एवं अभिनवगुप्त के व्यक्तित्व, कालक्रम एवं कृतित्व तथा उसमें वर्णित विषय वस्तु से परिचित हो पायेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्रीय विचारकों के सन्दर्भ में प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली को जान पायेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्रीय विचारकों के विचारों को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकेंगे ।

16.1 प्रस्तावना

साहित्यशास्त्र का उद्भव कब हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इस विषय में अनेक भ्रान्तियाँ है। यद्यपि वैदिक साहित्य में वेद और वेदांग का तथा अलंकारशास्त्र के मौलिक तत्त्वों एवं उपमा और रूपक आदि अलंकारों का पर्याप्त मात्रा में उल्लेख मिलता है किन्तु इसका वास्तविक शास्त्रीय निरूपण भरतमुनि से ही प्रारम्भ होता है। भरतमुनि का समय दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर दूसरी शताब्दी के बीच कभी भी माना जाता है। चतुर्थ शताब्दी के बहुत पहले ही साहित्यशास्त्र का व्यवस्थित विवेचन हो चुका था। आचार्य भरतमुनि से लेकर '**अलंकार–कौस्तुभ**' के रचयिता विश्वेश्वर पंडित (18 शताब्दी) तक लगभग दो हजार वर्षों तक अलंकारशास्त्र का इतिहास विस्तृत है। इनसे पूर्व के काव्यशास्त्रियों के यत्र–तत्र उल्लेख तो मिलता

हैं, किन्तु उनका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है। आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है क्योंकि आचार्य राजशेखर ने काव्यमीमांसा में उल्लेख किया है कि शंकर ने ब्रह्मा को तथा ब्रह्मा ने अन्य ऋषियों को काव्यशास्त्र का उपदेश दिया। जिन्होंने इसे अठ्ठारह अधिकरणों में विभाजित कर प्रत्येक ऋषि को एक–एक अधिकरण पर लिखने का आदेश दिया। इस प्रकार साहित्यशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ आचार्य भरत कृत नाट्यशास्त्र है। किन्तु कुछ आचार्यों का मत है कि–'अग्निपुराण' ही काव्यशास्त्र का आद्य ग्रन्थ है। अतः सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र का विवेचन करके काव्यशास्त्रीय परम्परा का अवलोकन करना आवश्यक होगा।

16.2 आचार्य भरत

संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में 'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता मुनि भरत का स्थान अग्रणी है। इनके नाट्यशास्त्र में कुल 36 अध्याय है। इसके तीन भाग है–**गद्यभाग, सूत्रविवरणस्वभावकारिका** तथा **श्लोक** है। इसमें विविध ललित–कलाओं का भी निरूपण किया गया है। यद्यपि इसमें अन्य विषयों का विवेचन किया गया है तथापि 'नाट्य' इसका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है।

प्रथम अध्याय में नाटक की उत्पति का विस्तृत विवरण है। इसमें देवताओं द्वारा ब्रह्मा से सभी वर्णों के योग्य मनोरंजन के साधन की प्रार्थना करना तथा ब्रह्मा द्वारा चारों वेदों से सामग्री लेकर पंचम वेद नाट्य वेद की रचना करना एवं भरत को उपदेश देना। आचार्य भरत द्वारा इन्द्र ध्वज महोत्सव पर अपने पुत्रों एवं अप्सराओं द्वारा नाट्य का अभिनय करना, अभिनय में विघ्न एवं उनका निवारण तथा नाटक के लक्षण और स्वरूप की व्याख्या की गई है।

द्वितीय अध्याय में नाट्यमण्डपों के भेद, प्रेक्षागृहों की रचना एवं उनके विभिन्न भागों के स्वरूप, रंगशीर्ष, रंगपीठ, मत्तवारिणी, प्रेक्षाभवन, यवनिका आदि की रचना के बारें में बताया गया है।

तृतीय अध्याय में रंगदैवत की पूजा, अनेक देवताओं महादेव, ब्रह्मा, विष्णु, बृहस्पति तथा ग्रहों का पूजन और उनसे वरदान की प्राप्ति का वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय में 'अमृत मंथन' और 'त्रिपुरदाह' नाटकों के अभिनय, ताण्डव नृत्य की उत्पत्ति तथा तकनीक, ताण्डव नृत्य के 108 उपकरणों, 32 अंगहारों और रोचकों का उपदेश, गीतों के प्रयोग आदि का वर्णन है।

पंचम अध्याय में पूर्वरंग, नान्दी, ध्रुवा और प्रस्तावना का वर्णन है।

षष्ठ अध्याय में मुनियों द्वारा रस विषयक प्रश्न, रस, विभाव और स्थायीभाव का विवेचन तथा विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः यह प्रसिद्ध रससूत्र तथा आठ रसों की विवेचना, वृत्तियों, प्रवृत्तियों, सिद्धियों, सात स्वरों, वाद्य, गीत आदि का वर्णन है।

सप्तम अध्याय में रस, भाव, स्थायीभाव, अनुभाव, विभाव तथा व्यभिचारी भाव के भेद–प्रभेदों का वर्णन है।

अष्टम अध्याय में अंगों एवं उपाङ्गों के अभिनय, आंगिक, वाचिक, सात्विक तथा आहार्य, चतुर्विध अभिनय का वर्णन है।

नवम अध्याय का विषय हस्ताभिनय है। इसमें हाथों और अंगुलियों की विभिन्न मुद्राओं

का तथा अंग संचालन में हाथों के संचालन का मार्ग बताया गया है।

दशम अध्याय का विषय शरीराभिनय है। इसमें वक्ष, पार्श्व, कटि तथा शरीर के अन्य भागों के अभिनय की विधि को बतलाया गया है।

एकादश अध्याय का विषय चारी–विधान है। इसमें 16 प्रकार की भौमी तथा 15 प्रकार की आकाशिकी चारियों की परिभाषायें एवं प्रयोग कहे गये हैं। इसके साथ पात्रों के अभिनय की गति, धनुर्विज्ञान का प्रदर्शन, व्यायाम आदि का वर्णन है।

द्वादश अध्याय का विषय मण्डल विधान है, जिसमें मण्डलों के नामों एवं लक्षणों को स्पष्ट किया गया है।

त्रयोदश अध्याय में गति प्रचार का वर्णन है। इसमें रसों तथा विभिन्न प्रकार के पात्रें के अनुकूल गति का सूक्ष्म वर्णन है। स्त्रियों द्वारा पात्रों के अनुकूल गति का सूक्ष्म वर्णन है। स्त्रियों द्वारा पुरुषों और पुरुषों द्वारा स्त्रियों का अभिनय करने की विधि का वर्णन है।

चतुर्दश अध्याय का वर्ण्य–विषय अभिनय में प्रवृत्ति धर्म की व्यंजना है। इसमें भारतवर्ष तथा अन्य वर्षों का स्वरूप, पांचाली, आवन्ती, दाक्षिणात्या तथा औड्र मागधी इन चार प्रवृत्तियों, दिशा आदि के विभागों, लोकधर्म तथा नाट्यधर्म, सुकुमार एवं आविद्ध दो प्रकार के रूपकों आदि को बताया गया है।

पंचदश अध्याय में वाचिक अभिनय के अर्न्तगत छन्दों का विभाग किया गया है। स्वरों, व्यंजनों, संज्ञाओं, क्रियाओं, उपसर्गो, सन्धियों आदि की आलोचना है। नाटक में संस्कृत और प्राकृत के प्रयोग के नियम है। छन्दों के भेदों, आठ गणों, गुरु, लघु, यति आदि के वर्णन है।

षोडश अध्याय में वृत्तों की परिभाषायें तथा नियम दिये गये है। इसमें सम तथा विषम छन्द का वर्णन है।

सप्तदश अध्याय का वर्ण्य विषय काव्य निरूपण, काव्य के 36 लक्षण, उपमा, दीपक, रूपक और यमक अलंकारों का स्वरूप इनके भेद तथा उदाहरण तथा काव्य के दस दोष तथा दस गुण का वर्णन है।

अष्टादश अध्याय में भाषा का विधान किया गया है। इसमें किन पात्रों को संस्कृत बोलनी चाहिए तथा किन पात्रों को प्राकृत बोलनी चाहिए। इसमें बताया गया है कि शौरसैनी प्रमुख प्राकृत है तथा मागधी, अवन्तिका, प्राच्या, अर्धमागधी, वाह्नीक और दक्षिणात्या अन्य प्राकृत है। इसके अतिरिक्त शबर, आभीर, चण्डाल, द्रविड़ आदि भी बताई गई है।

एकोनविंशति अध्याय में काकु स्वर की व्यंजना और विधान, पात्रों द्वारा एक दूसरे से सम्भावना करने तथा सम्बोधन करने की विधि, द्विगतियों तथा वेश्याओं के नाम रखने की विधि, पाठ्य के गुण, सात स्वर एवं उनका रसों में विनियोग, काकु के दो प्रकार, द्रुतविभाजित स्वर और अलंकार आदि।

विंशति अध्याय में रूपक के 10 भेदों और इसके उपभेदों का साङ्गोपाङ्ग निरूपण है। इसके साथ नाटक के अंगों–अंक, प्रवेशक, विषकम्भक आदि के बारे में तथा नाटिका तथा उपरूपकों के भेद, लास्य का लक्षण एवं प्रयोग बताये गये है।

एकविंशति अध्याय में नाटक की कथावस्तु की रचना करना, आधिकारिक कथा एवं प्रासंगिक कथा, पाँच अवस्थाएँ, पाँच सन्धियाँ तथा उनके अङ्ग, पञ्च कार्य, पंच अर्थप्रकृतियाँ, अर्थोपक्षेपक आदि का विस्तृत विवरण है। इसमें बताया गया है कि–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

द्विविंशति अध्याय में वृत्तियों का विस्तृत विवरण हैं। इसमें भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी चतुर्विध वृत्तियों की उत्पत्ति, लक्षण तथा विभिन्न रसों में इनके उपयोग का वर्णन है।

त्रयविंशति अध्याय में आहार्य अभिनय के स्वरूप, नेपथ्य, वेषभूषा के उपाय, आहार्य के चार अंग पुस्त, अलंकार, अङ्गरचना एवं संजीवनी बताये गये है।

चतुविंशति अध्याय का विषय सामान्य अभिनय है। इसमें **तत्त्व** की ब्राह्य उत्पत्ति, तरुणियों के तीन अङ्गज, दस स्वभावज और सात अयत्नज एवं 20 प्रकार के अलंकार बताये हैं। रस तथा भावों के अनुसार शारीरिक अभिनय, बारह प्रकार के वाचिक अभिनय, विभिन्न प्रकार की स्त्रियाँ, काम की दस अवस्थाएँ, दूतियों का भेजना, आठ प्रकार की नायिकाओं तथा उनके कामतन्त्र का वर्णन आदि विषय बताये गये है।

पंचविंशति अध्याय का विषय अभिनय में ब्राह्य उपचार है। इसमें वैशिक के लक्षण तथा उसके स्वाभाविक एवं सम्पादित 33 गुण, वैशिक के मित्र एवं दूतियाँ, प्रेम तथा घृणा करने वाली स्त्रियों की चेष्टायें, स्त्रियों के यौवन की चार अवस्थाये, प्रेमियों के चार प्रकार, स्त्रियों को वश में करने के पाँच उपाय आदि का वर्णन किया गया है।

षष्ठविंशति अध्याय में चित्राभिनय का वर्णन है। इसमें चन्द्र और सूर्य की अवस्थाओं को, मध्यरात्रि एवं अन्धकार आदि समयों को हर्ष–शोक आदि भावों का किस प्रकार प्रकट करना चाहिए। इसके साथ ही इसके निम्न विषय कहे गये हैं–आकाशभाषित, स्वगत, जनान्तिक एवं अपवारित के अभिप्राय, स्वप्नावस्था, मरण, विषों के वेग आदि के अभिनय, वृद्ध, बालक, आसन्नमृत्यु के बोलने के ढंग तथा जनसाधरण के अभिनय को सीखने आदि का वर्णन किया गया है।

सप्तविंशति अध्याय का विषय सिद्धि–व्यंजन है। इसमें दैवी तथा मानुषी सिद्धियों, दर्शकों तथा अभिनय की सफलता पर सन्तोष प्रकट करने के तरीकों, दैवी सिद्धि का अभिप्राय, दुर्घटनाओं और अपशकुनों के न होने और नाट्य के परीक्षकों की योग्यता का वर्णन है।

अष्टविंशति अध्याय में चार प्रकार के वाद्यों–तत्, अवनद्ध, घन और सुषिर का तथा सात प्रकार के स्वरों का एवं स्वरों के ग्रामो, मूर्च्छनाओं, श्रुतियों और जातियों का वर्णन है।

नवविंशति अध्याय में तत् वाद्यों का विवरण है। इसके साथ विशेष रस में जाति तथा स्वरों के प्रयोग का विधान किया गया है। चार वर्णों–आरोही, अवरोही, स्थायी एवं संचारी का वर्णन करके इन पर आश्रित 33 अलंकार कहे गये है।

त्रिंशत अध्याय का विषय सुषिरातोध है। इसमें वीणा की विधि एवं बाँसुरी के स्वरों का विवरण है।

एकत्रिंशत् अध्याय में ताल और लय के भेदों का विवरण है। गीतों के लक्षण और अंको का विवेचन है। ध्रुव, ताल, विधान और लास्य की व्याख्या है।

द्वित्रिंशत् अध्याय में ध्रुवाओं का प्रतिपादन है। ध्रुवाओं के 5 भेद तथा अन्य प्रभेद, गायक तथा वादक की योग्यता, स्त्रियों द्वारा गायन और पुरुषों द्वारा वादन, संगीत के आचार्य तथा शिष्य की योग्यता का वर्णन किया गया है।

त्रियत्रिंशत अध्याय में वाद्यों का विस्तृत विवेचन है। मृदङ्ग, प्रणव, दुर्दुर आदि अवनद्ध वाद्यों का यहाँ वर्णन है। इसके साथ ही स्वाति तथा नारद द्वारा वाद्यों का प्रवर्तन तथा सब प्रकार के वाद्यों के बजाने के अवसर, वाद्यों के देवता आदि विषय कहे गये है।

चर्तुरित्रंशत् अध्याय में पुरुषों और स्त्रियों की उत्तम, मध्यम तथा अधम। चार प्रकार की वृत्तियों तथा चार प्रकार के नायक–धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धात तथा धीरप्रशान्त का वर्णन है। विभिन्न श्रेणियों की स्त्रियाँ, अन्तःपुर की परिचारिकाओं और राजसेवकों के गुण आदि का वर्णन है।

पंञचत्रिंशत् अध्याय का प्रमुख विषय भूमिका पात्र की रचना है। इसमें विभिन्न पदार्थों द्वारा कृत्रिम दृश्यों का निर्माण, सुकुमार तथा आविद्ध दो प्रकार का अभिनय, सूत्रधार, पारिपार्श्विक, नट, शकार, विट, चेट, नायिका आदि के गुण एवं विविध पात्रों के भूमिकाओं का विस्तृत विवेचन है।

षष्ठत्रिंशत अध्याय में नाट्य का भूमि पर अन्तरण, ऋषियों के नाम तथा उनके द्वारा किये गये प्रश्न, नटवंशों की उत्पत्ति का इतिहास एवं नाट्यशास्त्र के माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

16.3 आचार्य भामह

साहित्यालोचना का प्रथम आचार्य भामह को माना गया है। रुय्यक न केवल इनकी चिरन्तन अलंकारकार की श्रेणी में सर्वप्रथम गणना करते हैं बल्कि 'अलंकार–प्रजापति' कहकर 'अलंकार मीमांसा' का आद्याचार्य भी घोषित करते हैं। भामह ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने काव्य दृष्टि से 'अलंकार' को और उसकी प्राणभूत वक्रोक्ति को काव्य का सर्वस्व मानकर काव्यलोचना का एक नवीन शास्त्र के रूप में प्रणयन किया।

आचार्य भामह अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तकाचार्य थे। काव्यालंकार अलंकार शास्त्र की प्रथम व स्वतन्त्र रचना है। इसमें छः परिच्छेद तथा 400 पद्य है।

- प्रथम परिच्छेद में काव्य–प्रयोजन, काव्य–स्वरूप तथा काव्यभेदों का विवेचन किया गया है।
- द्वितीय परिच्छेद में माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणों का विवेचन किया गया है।
- तृतीय परिच्छेद में अलंकारों का विवेचन किया गया है।
- चतुर्थ परिच्छेद में काव्य–दोषों का विवेचन किया गया है।
- पंचम परिच्छेद में प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त तथा प्रमाण आदि के स्वरूप का विवेचन करते हुए न्याय–विरोधी दोषों का वर्णन किया है।
- षष्ठ परिच्छेद में शब्द–शुद्धि पर विचार किया गया है।

इस प्रकार आचार्य भामह ने '**युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथकं**' द्वारा काव्य

में रसयोग का नियोजन किया–

स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपमयुजत।

प्रथमालीढमध्वः पिबन्ति कटुभेषजम्।।

(काव्यालंकार, 2/84)

इन्होंने **'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'** कहते हुए शब्दार्थ–युगल के सामंजस्य को काव्य माना। भरत प्रतिपादित 20 गुणों का माधुर्य, ओज तथा प्रसाद तीन गुणों में अन्तर्भाव किया गया। अलंकारों का व्यवस्थित विवेचन तथा वक्रोक्ति को अलंकारों का बीज स्वीकार करना। इस प्रकार भामह साहित्य–संसार के वे आचार्य हैं, जिन्होंने भारतीय अलंकारशास्त्र का शास्त्रीय विवेचन किया।

16.4 आचार्य वामन

काव्यस्वरूप के स्वाभाविक और यौक्तिक विकास को दृष्टि में रखकर दण्डी के अनन्तर 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के रचयिता वामन का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है। यही वे प्रथम अलंकारिक हैं जो काव्य की आत्मा का स्पष्ट विवेचन करते हैं। वामन के समय निर्धारण में विशेष कठिनाई नहीं है। आचार्य वामन ने **'इयं गेहे लक्ष्मी'** भवभूति के पद्य को उद्धृत किया है तथा प्रतिहारेन्दुराज व अभिनवगुप्त ने भी इनका उल्लेख किया है। अतएव वामन का समय सप्तम और नवम शताब्दी के मध्य में है।

वामन का एकमात्र प्रसिद्ध ग्रन्थ **'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति'** है। इस ग्रन्थ के तीन भेद **सूत्र, स्ववृत्ति** तथा **उदाहरण** हैं। समस्त ग्रन्थ पाँच अधिकरणों में विभक्त है।

- प्रथम अधिकरण में काव्य–प्रयोजन तथा काव्यात्मा रीति का वर्णन है।
- द्वितीय अधिकरण में पद, वाक्य तथा वाक्यार्थ के दोषों का उल्लेख है।
- तृतीय अधिकरण में गुण और अलंकारों के भेद तथा गुणों का सम्यक विवेचन किया गया है।
- चतुर्थ अधिकरण में यमक, अनुप्रास, उपमालंकार, उपमागत छः दोषों तथा उपमाप्रपंच में अन्य अलंकारों को निरूपित किया गया है।
- पंचम अधिकरण में शब्द–शुद्धि आदि पर विचार किया गया है।

आचार्य वामन से पूर्ववर्ती आचार्य काव्य–शरीर तक ही सीमित रहे। काव्यात्मा की ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। किन्तु वामन ने काव्य शरीर के लिये रीति रूप काव्यात्मा का प्रणयन किया। गुण, अलंकार, रीति आदि काव्यरूप उपकरणों का सम्यक रूप से विवेचन किया। उनके अनुसार गुण तथा अलंकार से संस्कृत शब्दार्थ काव्य है और काव्य की उपादेयता अलंकार के कारण है। अलंकार विवेचन में वामन ने अपनी स्वतन्त्र विशिष्टता को प्रतिपादित किया किन्तु सौन्दर्य विधान की दृष्टि से गुण की अपेक्षा अलंकार की महत्ता न्यून है। यदि गुण बन्ध अनुक्रम रचना का सौन्दर्य है तो अलंकार उक्ति वैचित्र्य या शब्दार्थ–रूप साधन का सौन्दर्य है। प्रथम विषयगत शैली का पर्याय है तो दूसरा विधन प्रकार है। काव्य एक चित्र है, उसमें रीति रेखायें हैं, अलंकार रंग हैं जो रेखा–सौन्दर्य को प्रगट करते है तथा गुण यौवन हैं–**एतासु तिसृषु रीतिषु रेखास्विव चित्रं काव्यं प्रतिष्ठितम् इति। (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/2/13)** यद्यपि वामन ने गुणालंकार आदि का विवेचन किया है तथापि

रीति–सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक रूप में उनको साहित्यशास्त्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

16.5 आचार्य दण्डी

काव्यादर्श के प्रणेता आचार्य दण्डी जहाँ एक ओर रीति–सम्प्रदाय के उद्भावक होते हुए दूसरी ओर अलंकार–सम्प्रदाय के पोषक भी थे। यद्यपि दण्डी का समय निश्चित नहीं है तथापि विद्वानों ने इनसे पूर्व शूद्रक तथा बाणभट्ट का उल्लेख किया क्योंकि **'लिम्पतीव तमोऽगांनि'** यह मृच्छकटिक का पद्य काव्यादर्श में उद्धृत किया गया है तथा इनकी रचना में बाणभट्ट के भावों की छाया परिलक्षित होती है। नवम शताब्दी के ग्रन्थों में भी दण्डी का नामोल्लेख प्राप्त होता है। अतः उनकी अन्तिम सीमा नवम शताब्दी के पश्चात् नहीं हो सकती। तथापि नवीन विवेचना के अनुसार सप्तम शताब्दी उत्तरार्द्ध ही दण्डी का समय माना जाता है। दण्डी द्वारा विरचित तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं–दशकुमारचरित, छन्दोविचिति तथा काव्यादर्श।

काव्यादर्श अलंकारशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसका साहित्यशास्त्र में उल्लेखनीय स्थान है। इसमें चार परिच्छेद है तथा श्लोक संख्या 660 है।

- प्रथम परिच्छेद में काव्य–लक्षण, काव्यभेद, तीन रीतियां वैदर्भी, गौड़ी, रीति एवं दस गुणों का वर्णन है। प्रतिभा, श्रुत और अभियोग नामक तीन काव्यहेतुओं का वर्णन किया गया है।
- द्वितीय परिच्छेद में 35 अलंकारों का सोदाहरण निरूपण किया है।
- तृतीय परिच्छेद में यमक, चित्रबन्ध तथा प्रहेलिका के 16 प्रकारों का सविस्तार वर्णन है।
- चतुर्थ परिच्छेद में काव्य–दोष निरूपित हैं।

काव्यादर्श में दण्डी ने गद्य के दोनों प्रकार–कथा और आख्यायिका में विशेष भेद नहीं माना है। उन्होंने गुण और अंलकारों का विशद विवेचन किया है अतः इनको अलंकारवादी कहा जाता है। उन्होंने रीति विषय को भी विवेचित किया किन्तु इसके लिये उन्होंने 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया। इस आधार पर पी॰ वी॰ काणे ने दण्डी को अंशतः अलंकार सम्प्रदाय का समर्थक तथा आंशिकरूपेण रीति सम्प्रदाय का समर्थक कहा है। **(संस्कृत साहित्य शास्त्र का इतिहास, पृष्ठ 111)**

अलंकारवादी होते हुए भी दण्डी रस के माधुर्य से परिचित थे और काव्य में रस की स्थिति को अनिवार्य मानते थे–

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसः स्थितः।

येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः।। (काव्यादर्श, 1/51)

परन्तु रस का संचार करने के लिये वे अलंकार को साधन रूप में आवश्यक मानते थे। रस–तत्व को काव्य में अप्रधान मानते हुए दण्डी ने इसको रसवदादि अलंकारों में परिगणित कर दिया। रस–युक्ति, आनन्ददायक कथन को उन्होंनें रसवद् अलंकार माना। रस, रीति आदि की विशेषता को मान्यता देते हुए भी अलंकारों को ही काव्य–सर्वस्व स्वीकार किया था। अतः दण्डी को अलंकारवादी आचार्य कहना ही अधिक उपयुक्त है।

16.6 आचार्य आनन्दवर्धन

आचार्य आनन्दवर्धन की कीर्ति का मूल आधारस्तम्भ 'ध्वन्यालोक' ही है। इसके तीन अंश है–कारिका, वृत्ति और उदाहरण। कारिका और वृत्ति दोनों ही आनन्दवर्द्धन द्वारा रचे गये है। उन्होंने अलंकारिकों को नवीन मार्ग की दिशा का अवबोध ही नहीं कराया अपितु ध्वनि की स्थापना करके समालोचना के मार्ग का समुन्मीलन किया। अतः आनन्दवर्द्धन को समालोचना मार्ग का केन्द्र बिन्दु कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार की मौलिक उद्भावना, सूक्ष्म विवेचनशक्ति और मननशीलता का परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ में चार उद्योत हैं।

प्रथम उद्योत में आनन्दवर्धन ने ध्वनि की स्थापना की है। इन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा बताकर ध्वनिविरोधियों के तीन मत–अभाववादी, भुक्तिवादी और अलक्षणीयतावादी बताये है। पुनः अभाववादियों के 3 पक्ष प्रस्तुत हुये हैं। ध्वनिकार ने इन सब मतों का खण्डन करके कहा है कि ध्वनि को अभिधा में, अलंकारों में या लक्षणा में अन्तर्भावित नहीं किया जा सकता। इसको अलक्षणीय भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका लक्षण किया गया है।

काव्य में वाच्य और प्रतीयमान दो प्रकार के अर्थ होते है। प्रतीयमान अर्थ सहृदयसंवेद्य एवं चारुत्व का हेतु है। जिस काव्य में प्रतीयमान अर्थ की प्रधानता होती है, वह ध्वनि काव्य होता है। यह अर्थ तीन प्रकार का होता है–वस्तु, अलंकार और रस। कुछ अलंकारों में यद्यपि प्रतीयमान अर्थ होता है, परन्तु ध्वनि का उन अलंकारों में अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। इस प्रकार ध्वनि काव्य के दो मुख्य भेद होते हैं–अविवक्षितवाच्य और विवक्षितान्यपरवाच्य। अविवक्षितवाच्य ध्वनि लक्षणामूल है और विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि अभिधामूल है।

द्वितीय उद्योत मे ध्वनि के भेद तथा उनके स्वरूप की व्याख्या उदाहरण सहित की गई है। अविवक्षितवाच्य ध्वनि के दो मुख्य भेद होते हैं–अर्थान्तरसंक्रमित और अत्यन्ततिरस्कृत। विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि के भी दो भेद होते हैं–असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग और संलक्ष्यव्यङ्गक्रम। इस प्रकार असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग ध्वनि रस, भाव, रसाभाव, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि, भावसबलता भेद से अनेक प्रकार की है। इसमें भी रसों और भावों के अनेक भेदों के होने से यह अनेक प्रकार की हो जाती हे। इसको रसध्वनि कहा गया है। रसध्वनि के प्रकरण में ही आनन्दवर्द्धन ने प्राचीन मतों का खण्डन करके गुणों की संख्या निर्धारित की है। तीन माधुर्य, ओज और प्रसाद उन्होंने गुण एवं अलंकार का भेद भी बताया है। इस प्रकरण में उन तथ्यों का कथन भी किया गया है कि रस आदि की अभिव्यक्ति में किन परिस्थितियों में रसध्वनि माननी चाहिये और किन परिस्थितियों में रसवद् आदि अलंकार समझने चाहियें।
संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग ध्वनि के मुख्य भेद तीन हैं–शब्दशक्त्युद्भव, अर्थशक्त्युद्भव और उभयशक्त्युद्भव। इन तीनों के भी वस्तु और अलंकार रूप एवं अर्थ की अभिव्यक्ति से दो–दो मुख्य भेद है। इनकी ध्वनिकार ने सोदाहरण व्याख्या की है। इन्होंने शब्दशक्त्युद्भव ध्वनि तथा श्लेष अलंकार का भेद भी बताया है।

तृतीय उद्योत में व्यंजक के भेद से ध्वनि के भेदों का वर्णन किया गया है। वर्ण, पद, वाच्य, संघटना और प्रबन्ध व्यङ्ग अर्थ के व्यंजक हो सकते हैं। इनसे वस्तुरूप अर्थ या रसरूप अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। आचार्य ने संघटना की व्यंजकता का विस्तार से वर्णन किया है। संघटना तीन प्रकार की होती है–असमासा, मध्यमसमासा और

दीर्घसमासा। यह संघटना गुणों का आश्रय लेकर रसादि की अभिव्यंजना करती है। ध्वनिकार के अनुसार रसबन्ध का औचित्य सर्वत्र आवश्यक है। इसके पश्चात् प्रबन्धप्रकाश्यता का विस्तृत विवेचन है। इस प्रकरण में रसों की अभिव्यक्ति और चर्वणा, विभिन्न रसों के सहायक अलंकार, कथावस्तु और उसका रस के साथ सम्बन्ध, विभक्ति, क्रिया, वचन, सम्बन्ध, कारक, कृत, तद्धित और समास की अलक्ष्यक्रमद्योत्यता, रसाभिव्यक्ति के विरोध का परिहार, काव्य में एक प्रधान रस का होना और अन्य रसों का अंग रूप से रहना, रस के अनुगुण शब्दार्थ–योजना करना इन विषयों का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है।

ध्वनिकार ने रस के अनुगुण वृत्तियों का विवेचन किया है। ये दो प्रकार की होती है– 1. वाच्य के आश्रय से कैशिकी आदि वृत्तियाँ 2. वाचक के आश्रय से उपनागरिका आदि वृत्तियाँ। इनका नियोजन कवि को उचित रूप से करना चाहिये। ध्वनिकाव्य का विस्तृत विवेचन करने के अनन्तर तीसरे उद्योत में ही ध्वनिकार ने गुणीभूतव्यङ्ग काव्य की व्याख्या की है। प्रतीयमान अर्थ के वाच्य की अपेक्षा प्रधन न होने पर गुणीभूतव्यङ्ग काव्य होता है। ध्वनिकार का इस सम्बन्ध में यह भी कहना है कि यदि इस काव्य की योजना रस आदि के तात्पर्य से की जाए, तो यह भी ध्वनि रूप ही होता है।

गुणीभूतव्यङ्ग काव्य का विवेचन करने के पश्चात् चित्रकाव्य का स्वरूप समझाया गया है। यह दो प्रकार शब्दचित्र और अर्थचित्र होता है। चित्रकाव्य वह होता है, जिसमें रस आदि की अपेक्षा न करके केवल शब्दालंकारों या अर्थालंकारों का वैचित्र्य प्रदर्शित किया गया हो। ध्वनिकार के अनुसार चित्रकाव्य को वस्तुतः काव्य नहीं समझना चाहिये, वह तो काव्य की केवल अनुकृतिमात्र है।

तीन प्रकार के काव्यों–ध्वनि, गुणीभूतव्यंङ्ग और चित्र के स्वरूप का निरूपण करके आचार्य का कहना है कि इन काव्यों के परस्पर मिश्रण से ध्वनि के असंख्य भेद और प्रभेद हो जाते है। इसके पश्चात् आचार्य ने रीतियों और वृत्तियों के सम्बन्ध में संक्षेप से अपने मत को कहा है।

चतुर्थ उद्योत में ध्वनिकार ने प्रतिभा के आनन्त्य का विस्तार से वर्णन किया है। साधारण वस्तुयें भी कवि की प्रतिभा से अपूर्व नवीन रूप धारण कर लेती हैं। व्यङ्ग–व्यंजक भाव अनेक प्रकार का होने पर भी कवि को रसादिमय काव्य की रचना के प्रति सावधान रहना चाहिये। 'रामायण' करुण रस प्रधान काव्य है और 'महाभारत' का प्रधान रस शान्त है। परम्परा से असंख्य काव्यों की रचना हो जाने पर भी कविता का क्षेत्र अनन्त है।

आनन्दवर्धन का कथन है कि कवियों के काव्य में साम्य हो सकता है परन्तु इसमें कुछ साम्य ग्राह्य है तथा कुछ त्याज्य है। अक्षर वे ही हैं तथा नवीन अक्षरों की रचना वाचस्पति भी नहीं कर सकते। वे ही अक्षर नवीन कविता में नवीनता का आधार करते हैं।

रचना को समाप्त करते हुये ध्वनिकार ने कहा कि सरस्वती ही कवि की सहायक होती है। ग्रन्थकार ने सहृदयों की उन्नति के लिये ध्वनि काव्य की रचना के हेतु ध्वनि के मार्ग का उन्मीलन कर दिया है।

16.7 आचार्य अभिनवगुप्त

साहित्य–सेवियों में अभिनवगुप्त का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका समय दशम शताब्दी

के लगभग निर्धारित किया गया है। उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा के माध्यम से विशाल साहित्य की रचना की। इस काल के प्रमुख आचार्य अभिनवगुप्त हैं जिन्होंने **'ध्वन्यालोक'** की टीका **'ध्वन्यालोकलोचन'** तथा **नाट्यशास्त्र** की टीका **'अभिनवभारती'** तथा काव्य–कौतुक, तन्त्रलोक तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की।

1. **ध्वन्यालोकलोचन**–यह टीका विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत टीका में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, उनको परवर्ती आचार्यों द्वारा पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ के विवेच्य–विषय मूलतः ध्वनि तथा रस रहे हैं। आनन्दवर्धन द्वारा लिखित 'ध्वन्यालोक' पर अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोकलोचन टीका लिखी थी। इसको 'सहृदयालोकलोचन', 'काव्यालोकलोचन' और 'ध्वन्यालोकलोचन' नाम दिये गये हैं। इस टीका को लिखने के कारण अभिनवगुप्त को साहित्यकारों के मध्य में लोचनकार कहा गया है। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में इस टीका का नाम बहुत प्रसिद्ध है। अभिनवगुप्त ने इस टीका में जिन सिद्धान्तों का समर्थन किया था, उनका अनुमोदन उत्तरवर्ती प्रायः सभी काव्यशास्त्रियों ने किया। इस टीका में ध्वनि और रसनिष्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की गई है और ध्वनिविरोधियों के मतों का दृढ़ता से खण्डन किया गया है। अभिनवगुप्त ने 'ध्वन्यालोक' पर अपने से पहले रचित 'चन्द्रिका टीका' के मतों को भी उद्धृत किया है। अनेक स्थानों पर उन्होंने इनका खण्डन भी किया है। 'ध्वन्यालोकलोचन' टीका यद्यपि 'ध्वन्यालोक' के गूढ़ अभिप्राय को समझाने में समर्थ हैं, तथापि कहीं–कहीं बहुत दुरूह तथा गूढ़ हो गयी है। 'ध्वन्यालोकलोचन' पर भी एक टीका केरल के एक विद्वान् उदयोत्तुंग ने लिखी थी, जो 'कौमुदीटीका' के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय यह टीका केवल पहले उद्योत पर ही उपलब्ध है।

2. **अभिनवभारती**–भरतकृत नाट्यशास्त्र पर लिखी गयी दूसरी टीका **'अभिनवभारती'** है, जिसको प्रकारान्तर से 'नाट्य–वेद–विवृति' भी कहते है। प्राचीन भारत की नाट्य कला, संगीत, अभिनय, छन्द, अलंकार आदि विषयों की इस टीका में सूक्ष्मता से व्याख्या की गयी है। महत्त्वपूर्ण विषयों की प्रतिपादिका होने के कारण यह टीका वस्तुतः एक टीका ही नहीं अपितु नाट्यशास्त्र पर लिखा गया एक मौलिकग्रन्थ है। आज यह टीका उपलब्ध नहीं है। अभिनव गुप्त कृत रस विवेचन विशेष महत्वपूर्ण है। उनके अभिव्यक्तिवाद को जो रस सिद्धान्त से सम्बन्धित है, साहित्य शास्त्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ।

बोध/अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न–1

क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही ((√)) का चिन्ह लगाइयें

i) आचार्य भरत के सौन्दर्यशास्त्रीय ग्रन्थ का नाम क्या है? (नाट्यशास्त्र/काव्यप्रकाश)

ii) नाट्यशास्त्र में कितने अध्याय है? (36/32)

iii) नाट्यशास्त्र में कितने भाग है? (3/5)

iv) अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है? (भामह/भरत)

v) भामह के ग्रन्थ का नाम है? (काव्यालंकार / काव्यादर्श)

vi) काव्यालंकार में कितने परिच्छेद है? (6 / 8)

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) वामन का ग्रन्थ काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ..... में विभक्त है। (अधिकरणों / अध्यायों)

ii) आचार्य दण्डी के द्वारा रचित काव्यादर्श में .....परिच्छेद हैं। (चार / आठ)

iii) आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक विभक्त .....हैं। (उद्योतो में / अध्यायों में)

iv) आचार्य अभिनवगुप्त ने .....टीका लिखी। (ध्वन्यालोकलोचन / साहित्यदर्पण)

v) अभिनवगुप्त के द्वारा लिखी गयी नाट्यशास्त्र पर .....टीका है। (ध्वन्यालोकलोचन / अभिनवभारती)

बोध प्रश्न–2

क) आचार्य भामह के सौन्दर्यशास्त्रीय ग्रन्थ पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

ख) आचार्य अभिनवगुप्त के सौन्दर्यशास्त्रीय ग्रन्थ ध्वन्यालोक लोचन पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

आचार्य भरत एवं उनके ग्रन्थ नाट्यशास्त्र पर निबन्ध लिखिए।

16.8 सारांश

परिवर्तन सृष्टि का नियम है, तो सृजन मानव मात्र का धर्म है। सर्जना की इस कड़ी में सौन्दर्य का अपना एक विशेष स्थान है। यह सौन्दर्य प्रकृति, जीवन और जगत में सर्वत्र व्याप्त है। प्रकृति और मानव के आभ्यन्तर और बाह्य सौन्दर्य से प्रेरित होकर ही काव्य सृजन हेाता है। भारतीय आचार्यों एवं मनीषियों ने सौन्दर्य को अपनी–अपनी दृष्टि से देखा परखा है। इस प्रकार सौन्दर्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा में भरत, भामह, वामन, दण्डी, आनन्दवर्धन एवं अभिनवगुप्त के जीवनवृत्त, रचनाकाल एवं सौन्दर्यशास्त्रीय कृतित्व में वर्णित विषय वस्तु का ज्ञान प्राप्त हुआ।

16.9 शब्दावली

यवनिका – पर्दा

आरोही – चढ़ने वाला

अवरोही – उतरने वाला

स्थायी – स्थिर

प्रतिभा	–	शक्ति
साम्य	–	समानता
वैषम्य	–	विषमता

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र व्याख्या. व्रजमोहन झा चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहर चन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973
- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्र भाषा–परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुकनाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय, चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2007
- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी चौखम्बा संस्कृत ,संस्थान वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वर नाथ मिश्र ,चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979
- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद्

काशी वि. सं. 2007

- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,
- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

ENGLISH REFERENCE

(1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored Aspects of the Rasa Theory,**vidyanidhi Prakashan, ed.1906

(2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**.,Firma KLM PVT Ltd.Calcutta,1976.

(3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta;** Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1968

(4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**, MLBD, Delhi, f.ed. 1961

(5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928

(6) V.Raghvan, **The Number of Rasas,** University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940

(7) V.Raghvan,**Some Concepts of Alankar Shastras**, Adyar Library, Adyar, 1942

16.11 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

क) (i) नाट्यशास्त्र (ii) 36 (iii) 3 (iv) भामह (v) काव्यालंकार (vi) 6

ख) (i) अधिकरणों में (ii) चार (iii) उद्योतो में (iv) ध्वन्यालोक लोचन

(v) अभिनवभारती

बोध प्रश्न–2

क) साहित्यालोचना का प्रथम आचार्य भामह को माना गया है। रुय्यक न केवल इनकी चिरन्तन अलंकारकार की श्रेणी में सर्वप्रथम गणना करते हैं बल्कि 'अलंकार–प्रजापति' कहकर 'अलंकार मीमांसा' का आद्याचार्य भी घोषित करते हैं। भामह ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने काव्य दृष्टि से 'अलंकार' को और उसकी प्राणभूत वक्रोक्ति को काव्य का सर्वस्व मानकर काव्यलोचना का एक नवीन शास्त्र के रूप में प्रणयन किया।

आचार्य भामह अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तकाचार्य थे। काव्यालंकार अलंकार शास्त्र की प्रथम व स्वतन्त्र रचना है। इसमें छः परिच्छेद तथा 400 पद्य है।

- प्रथम परिच्छेद में काव्य–प्रयोजन, काव्य–स्वरूप तथा काव्यभेदों का विवेचन किया गया है।
- द्वितीय परिच्छेद में माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणों का विवेचन किया गया है।
- तृतीय परिच्छेद में अलंकारों का विवेचन किया गया है।
- चतुर्थ परिच्छेद में काव्य–दोषों का विवेचन किया गया है।
- पंचम परिच्छेद में प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त तथा प्रमाण आदि के स्वरूप का विवेचन करते हुए न्याय–विरोधी दोष का वर्णन किया है।
- षष्ठ परिच्छेद में शब्द–शुद्धि पर विचार किया गया है।

ख) ध्वन्यालोकलोचन–यह टीका विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत टीका में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, उनको परवर्ती आचार्यों द्वारा पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ के विवेच्य–विषय मूलतः ध्वनि तथा रस रहे हैं। आनन्दवर्धन द्वारा लिखित 'ध्वन्यालोक' पर अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक लोचन टीका लिखी थी। इसको 'सहृदयालोकलोचन', 'काव्यालोकलोचन' और 'ध्वन्यालोकलोचन' नाम दिये गये हैं। इस टीका को लिखने के कारण अभिनवगुप्त को साहित्यकारों के मध्य में लोचनकार कहा गया है। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में इस टीका का नाम बहुत प्रसिद्ध है। अभिनवगुप्त ने इस टीका में जिन सिद्धान्तों का समर्थन किया था, उनका अनुमोदन उत्तरवर्ती प्रायः सभी काव्यशास्त्रियों ने किया। इस टीका में ध्वनि और रसनिष्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की गई है और ध्वनिविरोधियों के मतों का दृढ़ता से खण्डन किया गया है। अभिनवगुप्त ने 'ध्वन्यालोक' पर अपने से पहले रचित 'चन्द्रिका टीका' के मतों को भी उद्धृत किया है। अनेक स्थानों पर उन्होंने इनका खण्डन भी किया है। 'ध्वन्यालोकलोचन' टीका यद्यपि 'ध्वन्यालोक' के गूढ़ अभिप्राय को समझाने में समर्थ हैं, तथापि कहीं–कहीं बहुत दुरूह तथा गूढ़ हो गयी है। 'ध्वन्यालोकलोचन' पर भी एक टीका केरल के एक विद्वान् उदयोत्तुंग ने लिखी थी, जो 'कौमुदीटीका' के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय यह टीका केवल पहले उद्योत पर ही उपलब्ध है।

अभ्यास प्रश्न

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 17 सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख विचारक (भाग–2): कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, विश्वनाथ और जगन्नाथ

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 आचार्य कुन्तक

17.3 आचार्य महिमभट्ट

17.4 आचार्य क्षेमेन्द्र

17.5 आचार्य विश्वनाथ

17.6 आचार्य जगन्नाथ

17.7 सारांश

17.8 शब्दावली

17.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.10 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- सौन्दर्यशास्त्रीय आचार्य कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, विश्वनाथ एवं जगन्नाथ के व्यक्तित्व, कालक्रम एवं कृतित्व तथा उसमें वर्णित विषय वस्तु से परिचित हो पायेंगे।
- सौन्दर्यशास्त्रीय विचारकों के सन्दर्भ में प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली को जान पायेंगे।

17.1 प्रस्तावना

सौन्दर्यशास्त्र का क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक तथा विशाल है। साहित्य शास्त्र तो केवल शब्दों के माध्यम द्वारा ही निर्मित कला का ही द्योतन करता है, परन्तु सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं जैसे भास्कर्य, चित्र तथा संगीत आविद्ध में निर्दिष्ट चारुत्व को भी अपने क्षेत्र के अंतर्गत करता है। इसलिए प्रस्तुत इकाई में सौन्दर्य शास्त्र के प्रमुख विचारक भाग–2 में आचार्य कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, विश्वनाथ एवं पंण्डितराज जगन्नाथ के व्यक्तित्व, कालक्रम एवं कृतित्व तथा उसमें वर्णित विषय–वस्तु का विवेचन किया जायेगा।

17.2 आचार्य कुन्तक

आचार्य कुन्तक का आविर्भाव संस्कृत काव्यशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उन्होंने

अलंकारवादी आचार्यों द्वारा विवेचित 'वक्रोक्ति अलंकार' को अत्यधिक विस्तृत रूप प्रदान करते हुए सुप्रतिष्ठित ध्वनि–सिद्धान्त के विरोध में **'वक्रोक्ति सम्प्रदाय'** को जन्म दिया। कुन्तक ने काव्य के प्रायः सभी उपकरणों को वक्रोक्ति के व्यापक परिवेश में अन्तर्निहित कर उसे काव्य की आत्मा घोषित किया। उनकी दृष्टि में प्रसिद्ध कथन शैली से भिन्न चारुतर, विचित्र एवं असाधारण वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है।

वक्रोक्ति जीवितम्–कुन्तक का एकमात्र ग्रन्थ **'वक्रोक्ति जीवितम्'** है, जो अधूरा ही प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ में चार उन्मेष है।

- प्रथम उन्मेष में मंगलाचरण के पश्चात काव्य–प्रयोजन, काव्य और साहित्य का लक्षण, वक्रोक्ति–स्वरूप एवं भेद, वैचित्र्यादि विषयों का विवेचन है।
- द्वितीय उन्मेष में वक्रोक्ति के प्रथम तीन भेदों–वर्णविन्यास वक्रता, पद पूर्वार्द्धवक्रता और प्रत्यय वक्रता का वर्णन किया गया है।
- तृतीय उन्मेष में वाक्य–वक्रता की विवेचना है। इसके अर्न्तगत ही वस्तु वक्रता तथा अलंकारों का विवेचन हुआ है। कुन्तक ने अर्थालंकारों का वर्णन किया गया है।
- चतुर्थ उन्मेष में प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध–वक्रता का विवेचन किया गया, जिसमें ध्वनि आदि के उदाहरण दिये गये हैं।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय का प्रवर्तक आचार्य कुन्तक को माना जाता है। उनका सम्प्रदाय भी ऐतिहासिक तथा तार्किक दृष्टि से अलंकारसम्प्रदाय ही है। वे वक्रोक्ति को काव्य का प्राण मानते हैं अथवा काव्य की आत्मा वक्रोक्ति है। उन्होंने ध्वनि या व्यंग्य की मान्यता का विरोध किया और वक्रोक्ति में ही इसका समावेश किया। कुन्तक ने स्वप्रणीत षड्विध वक्रता में वामन–सम्मत गुणसमूह को तथा ध्वनिकार सम्मत व्यंग्यत्रयी को सम्मिलित कर लिया है। किन्तु उनकी यह वक्रोक्ति अलंकार्य नहीं अलंकार है और अलंकार्य रसादि नहीं, अपितु शब्दार्थ है। इस प्रकार भामह प्रणीत अलंकार, वामन कृत गुण तथा कुन्तक की वक्रोक्ति सभी अलंकार हैं।

17.3 आचार्य महिमभट्ट

आचार्य महिमभट्ट तथा तत्प्रणीत **'व्यक्तिविवेक'** का साहित्य शास्त्र में प्रतिष्ठित स्थान है। इनका समय एकादश शताब्दी के लगभग माना जाता है। महिमभट्ट राजानक उपाधि से विभूषित हुए थे इसलिए उनको कश्मीर निवासी माना जाता है। इनके पिता का नाम श्री धैर्य ओर गुरु का नाम श्यामल था।

व्यक्तिविवेक–'व्यक्तिविवेक' उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो तीन विमर्शों में विभाजित है।

- प्रथम विमर्श में ध्वनि–लक्षण को उद्धृत करके उसका अनुमान में अन्तर्भाव किया गया।
- द्वितीय विमर्श में अनौचित्य का विवेचन है।
- तृतीय विमर्श में ध्वन्यालोक के 40 दृष्टान्तों को अनुमान में अन्तर्निहित माना।

व्यक्तिविवेककार का मुख्य उद्देश्य ध्वनि का अनुमान मे अन्तर्भाव करना है। उनके मतानुसार दो प्रकार का वाच्य तथा अनुमेय अर्थ है। अनुमेय अर्थ तीन प्रकार के वस्तु, अलंकार और रस है। वस्तु और अलंकार वाच्य भी हो सकते हैं, किन्तु रस अनुमेय ही

है। इस प्रकार उन्होनें ध्वनि का अनुमान में ही अन्तर्भाव कर दिया है। काव्य–प्रकाशकार ने दोष विवेचन में 'व्यक्ति–विवेक' का अनुसरण किया है। किन्तु उन्होंने इसका स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया। इस प्रकार महिमभट्ट ने 'व्यक्तिविवेक' ग्रन्थ के द्वारा साहित्य कोष की वृद्धि में महान् सहयोग प्रदान किया।

17.4 आचार्य क्षेमेन्द्र

औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक तथा औचित्य विचार चर्चा के प्रणेता आचार्य क्षेमेन्द्र का काव्य जगत् में उत्कृष्ट स्थान है। उनका समय प्रायः निश्चित सा ही है क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थ **'औचित्य–विचार–चर्चा'** तथा **'कवि कण्ठाभरण है।** क्षेमेन्द्र का समय 990–1066 ई॰ के मध्य मानना उचित प्रतीत होता है। क्षेमेन्द्र ने अनेक ग्रन्थों **भारत–मंजरी, बृहत–कथा–मंजरी, सुवृत तिलक** की रचना की थी। किन्तु **औचित्य विचार चर्चा** और **कवि कण्ठाभरण** प्रसिद्धि प्राप्त ग्रन्थ है।

1. **औचित्यविचारचर्चा**–काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में कुल 19 कारिकायें है तथा अन्त में 5 श्लोकों में कवि ने अपने वंश का स्वल्प सा परिचय दिया है। कारिकाओं पर क्षेमेन्द्र ने स्वयं वृत्ति भी लिखी थी और उदाहरणों द्वारा उनकी व्याख्या की थी। इनमें कुछ उदाहरण तो क्षेमेन्द्र के स्वरचित हैं, परन्तु अधिकांश उदाहरण कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, बाण, व्यास, अमरुक, कुमारदास, मातृगुप्त आदि कवियों की रचनाओं से लिये गये है।

   'औचित्यविचारचर्चा' के द्वारा क्षेमेन्द्र ने औचित्य सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था और औचित्य की व्याख्या की थी। क्षेमेन्द्र के अनुसार औचित्य ही रससिद्ध काव्य का प्राणभूत तत्त्व है। उनका कथन है कि प्रत्येक वस्तु अपने स्थान के औचित्य से शोभायमान होती है इसलिये औचित्य के बिना अलंकार और गुण भी रोचक नहीं होते। क्षेमेन्द्र ने औचित्य की निम्न प्रकार से व्याख्या की है–

   उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य तत्।

   उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।

   अर्थात् जो वस्तु जिनके अनुरूप होती है, उनको हम **'उचित'** कहते हैं। उचित का भाव ही औचित्य है।

2. **कविकुलकण्ठाभरण**–क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ कवि–शिक्षा विषय पर लिखा गया है। पी॰ वी॰ काणे का यह अभिमत है कि क्षेमेन्द्र द्वारा उल्लिखित 'कविकर्णिका' ग्रन्थ और 'कविकण्ठाभरण' एक ही हो सकते हैं। 'कविकर्णिका' नाम से कोई ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। 'कविकण्ठाभरण' में 55 कारिकायें हैं, जो 5 सन्धियों, अध्यायों में संकलित हैं। क्षेमेन्द्र ने कविता करने की 5 सन्धियाँ या सरणियाँ निम्न प्रकार से प्रतिपादित की हैं–

   तत्राकवेः कवित्वप्राप्तिः शिक्षाप्राप्तगिरः कवेः।

   चमत्कृतिश्च शिक्षाप्तौ गुणदोषोद्गतिस्ततः।।

   पश्चात् परिचयप्राप्तिरित्येते पञ्च सन्धयः।।

इस ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के तीन वर्ग कहे हैं और कवियों को पाँच

वर्गों–छायोपजीवी, पदकोपजीवी, पादोपजीवी, सकलोपजीवी और भुवनोपजीवी में विभक्त किया है। इसमें उन्होंने 10 प्रकार के चमत्कारों का भी वर्णन किया है।

3. **सुवृत्ततिलक**–इस ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र ने छन्दों का सविस्तार सुन्दर विवेचन किया है। इसमें वृत्त (छन्द) के औचित्य के सम्बन्ध में विचार है। इस ग्रन्थ को जहाँ तक वृत्त के औचित्य का सम्बन्ध है।

अभिनवगुप्त के एक शिष्य क्षेमसार थे। इन्होंने शैव दर्शन पर अनेक पुस्तकें लिखी थीं। इन्होंने अभिनवगुप्त के एक ग्रन्थ 'परमार्थसार' की व्याख्या भी की थीं। नाम की समता के कारण कुछ समालोचकों ने क्षेमसार और क्षेमेन्द्र को एक ही माना है। परन्तु इस प्रकार की धारणा गलत है। इन दोनों का व्यक्तित्व भिन्न था। 'सुवृत–तिलक' में छन्दों के सविस्तार विवेचन के अतिरिक्त **'छन्दोचित्य'** के सम्बन्ध में भी उन्होंने विचार व्यक्त किये हैं। इस प्रकार एकादश शताब्दी के मध्य तक अलंकार–शास्त्र में अनेक नवीन मतों तथा नवीन मार्गो का उद्‌भव व विकास हो चुका था। यद्यपि ध्वनिकार तथा औचित्य प्रवर्तक आचार्यों ने साहित्य–शास्त्र को समन्वित मार्ग पर ले जाने का प्रयास किया तथापि उनका दृष्टिकोण भी काव्य के विशेष तत्त्व की ओर ही अधिक रहा, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि समन्वय मार्ग का उद्‌घाटन किसी विशिष्ट प्रतिभा की प्रतीक्षा कर रहा हो।

17.5 आचार्य विश्वनाथ

आचार्य विश्वनाथ साहित्यशास्त्रीय गगन के दीप्तिमान नक्षत्र है। उनका समय निश्चित ही है क्योंकि उन्होंने **'गीतगोविन्द'** तथा **'नैषधीयचरितम्'** के उद्धरण दिये है। इनकी रचनाओं से खिलजी वंश के सुल्तान अलाउद्दीन का उल्लेख मिलता है। अतः इनकी पूर्व सीमा 13वीं शताब्दी का अन्तिम भाग है। विश्वनाथ ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें **'राघव–विलास'** महाकाव्य का भी उल्लेख किया गया है। अलंकारशास्त्र पर उनकी दो रचनायें उपलब्ध होती है– प्रथम, काव्यप्रकाश की टीका **'काव्यप्रकाशदर्पण'** और दूसरी मौलिक रचना **'साहित्यदर्पण'** है, जो साहित्यशास्त्र पर लिखा गया लोकप्रिय ग्रन्थ है।

साहित्यदर्पण–साहित्य दर्पण तीन भागों में विभक्त कारिका, वृत्ति, उदाहरण किया गया है। इस ग्रन्थ में दस परिच्छेद है।

- **प्रथम परिच्छेद**– इसमें काव्यस्वरूप एवं काव्यप्रयोजन का वर्णन किया गया है।
- **द्वितीय परिच्छेद**– इसमें शब्दार्थ निर्णय का वर्णन किया गया है।
- **तृतीय परिच्छेद**– इसमें रस–भावादि का वर्णन किया गया है।
- **चतुर्थ परिच्छेद**– इसमें काव्यभेद का वर्णन किया गया है।
- **पंचम परिच्छेद**– इसमें ध्वनि तथा व्यंजनावृत्ति का वर्णन किया गया है।
- **षष्ठ परिच्छेद**– इसमें नाट्य का वर्णन किया गया है।
- **सप्तम परिच्छेद**– इसमें दोष का वर्णन किया गया है।
- **अष्टम परिच्छेद**– इसमें गुण का वर्णन किया गया है।
- **नवम परिच्छेद**– इसमें वैदर्भी आदि रीतियों का वर्णन किया गया है।
- **दशम परिच्छेद**– इसमें शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का उल्लेख किया गया है।

इस ग्रन्थ में जहाँ एक ओर श्रव्यकाव्यों का विवेचन है, वहीं दूसरी ओर दृश्य–काव्यों की विविध विशेषताओं का विवरण दिया गया है। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि प्राचीन समालोचकों द्वारा विश्वनाथ को द्वितीय श्रेणी का शास्त्रकार स्वीकार कर लेने पर भी अपनी काव्यगत सरलता तथा व्यापकता के कारण इनका साहित्यदर्पण अत्यधिक उपयोगी व महत्त्वपूर्ण है।

कविराज विश्वनाथ के पश्चात् तथा जगन्नाथ से पूर्व अलंकारशास्त्र पर अनेक मौलिक टीका ग्रन्थ लिखे गये, जिनमें भानुदत्त की रस मंजरी, रस–तरंगिणी है। केशवमिश्र का **'अलंकारशेखर'** अप्पय–दीक्षित का 'कुवलयानन्द' इत्यादि उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त **'अलंकाररहस्य'** नामक विशाल ग्रन्थ का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

17.6 आचार्य जगन्नाथ

व्याकरण, न्याय वैशेषिक पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा आदि विविध विषयों के ज्ञाता पंडितराज जगन्नाथ का सम्प्रदाय विशेष में ही नहीं अपितु साहित्य शास्त्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें पण्डितराज की उपाधि शाहजहाँ ने प्रदान की थी। उनका समय 17वीं शताब्दी का मध्य–भाग है।

पंडितराज जगन्नाथ ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें 'रसगंगाधर' 'चित्रमीमांसा' अलंकारशास्त्र का ग्रन्थ है। 'मनोरमाकुचमर्दिनी' व्याकरण पर लिखा गया ग्रन्थ है तथा 'सुधालहरी' , 'जगदाभरण', 'आसफ–विलास', 'प्राणाभरण', 'भामिनी विलास' तथा 'यमुनावर्णन–चम्पू' आदि काव्य ग्रन्थ है।

रसगंगाधर–'रसगंगाधर' एक विशिष्ट शैली वाला ग्रन्थ है। उन्होंने किसी वस्तु का प्रथमतः लक्षण किया और फिर उसका स्वनिर्मित दृष्टान्त देते हुए विशद व्याख्या दिया। मम्मट आदि आचार्यों ने काव्य के तीन भेद किये किन्तु जगन्नाथ का अभिमत है कि काव्य के चार भेद करने चाहिये–**'तच्चोतमोत्तमोमध्यमाध्मभेदाच्चतुर्धा। (रसगंगाधर पृष्ठ 36)** जगन्नाथ स्वयं एक प्रतिभाशाली कवि हैं। उनकी प्रतिभा न केवल स्वरचित रचनाओं से परिलक्षित होती है इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में दूसरों की कविता को नहीं अपितु स्वरचित काव्यों के श्लोकों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत कर रहा है। कस्तूरी मृग अपनी सुगन्ध का सेवन करता है, पुष्पों की नहीं–

निर्माय नूतनोदाहरणानुरूपं काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किंचित्।

किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धः, कस्तूरिका जननशक्तिभृता मृगेण।।

रसगंगाधर पृष्ठ106

विषय–प्रतिपादन की दृष्टि से **'रसगंगाधर'** को दो आननों में विभक्त किया गया है।

- **प्रथम आनन** में जगन्नाथ ने सर्वप्रथम काव्य–लक्षण, काव्य–हेतु और काव्य भेदों की व्याख्या करने के उपरान्त रस–स्वरूप विवेचित किया। गुण–स्वरूप तथा संख्या का उल्लेख करते हुए प्राचीन आचार्यों द्वारा विवेचित शब्द तथा अर्थगुणों के स्वरूप को बताकर उन्होंने उनका अन्तर्भाव माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीन गुणों में किया। इसके अनन्तर विभिन्न भावों का निरुपण करके रसाभास, भावशान्ति, भावसन्धि और भावसबलता का उल्लेख है।

- **द्वितीय आनन** में संलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि का विवेचन करते हुए शक्ति नियामक तत्त्वों संयोग–विप्रयोग आदि का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् शब्दशक्तिमूलक तथा अर्थशक्तिमूलक ध्वनियों का विस्तृत वर्णन है। अन्त में लक्षणामूलध्वनि को निरुपित करके अभिधा और लक्षणा शक्तियों पर प्रकाश डाला गया है।

  पंडितराज जगन्नाथ के पश्चात् भी समय–समय पर साहित्य–जगत् में अनेक आचार्य हुए, जिनमें आशाधर भट्ट, आचार्य विश्वेश्वर एवं नागेश भट्ट, नरसिंह आदि विशेषतः उद्धरणीय है।

बोध प्रश्न–1

क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही ((√)) का चिन्ह लगाइयें

i) आचार्य कुन्तक के सौन्दर्यशास्त्रीय ग्रन्थ का क्या है? (वक्रोक्तिजीवितम्/नाट्यशास्त्र)

ii) वक्रोक्तिजीवितम् कितने उन्मेषों में विभक्त है? (4/8)

iii) व्यक्तिविवेक में कितने विमर्श है? (3/4)

iv) आचार्य क्षेमेन्द्र किस सम्प्रदाय की स्थापना की? (रीति/औचित्य)

v) आचार्य क्षेमेन्द्र ने किस सौन्दर्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की? (औचित्यविचारचर्चा/साहित्यदर्पण)

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) क्षेमेन्द्र का द्वितीय सौन्दर्यशास्त्रीय ग्रंथ का..... नाम है? (कविकुलकण्ठाभरण/ सरस्वतीकण्ठाभरण)

ii) आचार्य विश्वनाथ ने .....ग्रन्थ की रचना की है? (साहित्यदर्पण/ध्वन्यालोक)

iii) साहित्य दर्पण में ..... कितने परिच्छेद है? (10/8)

iv) पंण्डितराज जगन्नाथ के ग्रन्थ का नाम..... है? (रसगंगाधर/काव्यप्रकाश)

बोध प्रश्न–2

क. कुन्तक के वक्रोक्तिजीवितम् के विषयवस्तु को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

ख. क्षेमेन्द्रकृत कविकुलकण्ठाभरण के विषयवस्तु को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

1. पंडितराज जगन्नाथ के सौन्दर्यशास्त्रीय ग्रन्थ रसगंगाधर पर निबन्ध लिखिए।

17.7 सारांश

भारतीय चिन्तन परम्परा में काव्य शास्त्र अथवा काव्य और साहित्य सम्बन्धी समीक्षा विचार विश्लेषण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। वैदिक काल से लेकर निरन्तर

कविता की समीक्षा उपलब्ध होती है। इस प्रकार अज्ञात काल से लेकर विश्वेश्वर पण्डित तक आचार्यों की सुदीर्घ परम्परा रही। काव्यशास्त्र के बीजभूत तत्वों से अंकुरित, काव्य की विचारपरम्परा अत्यन्त फली–फूलीं और विश्वेश्वर पण्डित तक आते–आते इसने अक्षय वटवृक्ष का स्वरूप धारण कर लिया, जिसकी छाया तले रसिकों को आनन्दानुभूति होती है और मन–मस्तिष्क को अद्‌भुत शान्ति मिलती है इसलिए खण्ड–4 इकाई–17 सौन्दर्य शास्त्र के प्रमुख विचारक भाग–2 में आचार्य कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, विश्वनाथ एवं जगन्नाथ के व्यक्तित्व, कालक्रम एवं कृतित्व तथा उसमें वर्णित विषय वस्तु का विवेचन किया गया है।

17.8 शब्दावली

आनन्दानुभूति	–	आनन्द का अनुभव
अद्‌भुत	–	अनोखा
अंकुरित	–	उत्पन्न, प्रस्फुटित
सुदीर्घ	–	बहुत बड़ा
परिलक्षित	–	दृष्टिगोचर होती है
स्वनिर्मित	–	अपने आप रची गयी

17.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र व्याख्या. व्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973
- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्र भाषा–परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुक नाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय, चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन, काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

- रसगंगाधर, पण्डितराज जगन्नाथ, सम्पा. एवं व्याख्या चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, 2001
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2007
- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वर नाथ मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979
- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद् काशी वि. सं. 2007
- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,
- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

ENGLISH REFERENCE

(1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored Aspects of the Rasa Theory,**vidyanidhi Prakashan, ed.1906

(2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**.,Firma KLM PVT Ltd.Calcutta,1976.

(3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta;** chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1968

(4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**,MLBD,Delhi,f.ed. 1961

(5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928

(6) V.Raghvan, **The Number of Rasas,** University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940

(7) V.Raghvan,**Some Concepts of Alankar Shastras**, Adyar Library, Adyar, 1942

17.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

क) (i) वक्रोक्तिजीवितम् (ii) 4 (iii) 3 (iv) औचित्य (v) औचित्यविचारचर्चा

ख) (i) कविकुलकण्ठाभरण (ii) साहित्यदर्पण (iii) 10 (iv) रसगंगाधर

बोध प्रश्न–2

क) वक्रोक्ति जीवितम्– कुन्तक का एकमात्र ग्रन्थ '**वक्रोक्ति जीवितम्**' है, जो अधूरा ही प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ में चार उन्मेष है।

- प्रथम उन्मेष में मंगलाचरण के पश्चात काव्य–प्रयोजन, काव्य और साहित्य का लक्षण, वक्रोक्ति–स्वरूप एवं भेद, वैचित्र्यादि विषयों का विवेचन है।
- द्वितीय उन्मेष में वक्रोक्ति के प्रथम तीन भेदों–वर्णविन्यास वक्रता, पद पूर्वार्द्धवक्रता और प्रत्यय वक्रता का वर्णन किया गया है।
- तृतीय उन्मेष में वाक्य–वक्रता की विवेचना है। इसके अर्न्तगत ही वस्तु वक्रता तथा अलंकारों का विवेचन हुआ है। कुन्तक ने अर्थालंकारों का वर्णन किया गया है।
- चतुर्थ उन्मेष में प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध–वक्रता का विवेचन किया गया, जिसमें ध्वनि आदि के उदाहरण दिये गये हैं।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय का प्रवर्तक आचार्य कुन्तक को माना जाता है। उनका सम्प्रदाय भी ऐतिहासिक तथा तार्किक दृष्टि से अलंकारसम्प्रदाय ही है। वे वक्रोक्ति को काव्य का प्राण मानते हैं अथवा काव्य की आत्मा वक्रोक्ति है। उन्होंने ध्वनि या व्यंग्य की मान्यता का विरोध किया और वक्रोक्ति में ही इसका समावेश किया। कुन्तक ने स्वप्रणीत षड्विध वक्रता में वामन–सम्मत गुणसमूह को तथा ध्वनिकार सम्मत व्यंग्यत्रयी को सम्मिलित कर लिया है। किन्तु उनकी यह वक्रोक्ति अलंकार्य नहीं अलंकार है और अलंकार्य रसादि नहीं, अपितु शब्दार्थ है। इस प्रकार भामह प्रणीत अलंकार, वामन कृत गुण तथा कुन्तक की वक्रोक्ति सभी अलंकार हैं।

ख) कविकुलकण्ठाभरण–क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ कवि–शिक्षा विषय पर लिखा गया है। पी॰ वी॰ काणे का यह अभिमत है कि क्षेमेन्द्र द्वारा उल्लिखित 'कविकर्णिका' ग्रन्थ और 'कविकण्ठाभरण' एक ही हो सकते हैं। 'कविकर्णिका' नाम से कोई ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। 'कविकण्ठाभरण' में 55 कारिकायें हैं, जो 5 सन्धियों अध्यायों में संकलित हैं। क्षेमेन्द्र ने कविता करने की 5 सन्धियाँ या सरणियाँ निम्न प्रकार से प्रतिपादित की हैं–

तत्राकवेः कवित्वप्राप्तिः शिक्षाप्राप्तगिरः कवेः।

चमत्कृतिश्च शिक्षाप्तौ गुणदोषोद्गतिस्ततः।।

पश्चात् परिचयप्राप्तिरित्येते पञ्च सन्धयः।।

इस ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के तीन वर्ग कहे हैं और कवियों को पाँच वर्गों–छायोपजीवी, पदकोपजीवी, पादोपजीवी, सकलोपजीवी और भुवनोपजीवी में विभक्त किया है। इसमें उन्होंने 10 प्रकार के चमत्कारों का भी वर्णन किया है।

अभ्यास प्रश्न

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 18 अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सांस्कृतिक, सामाजिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सांस्कृतिक दृष्टिकोण

18.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सामाजिक दृष्टिकोण

18.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण

18.5 सारांश

18.6 शब्दावली

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित सांस्कृतिक दृष्टिकोण को जान पायेंगे।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित सामाजिक दृष्टिकोण को जान पायेंगे।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण को जान पायेंगे।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित सांस्कृतिक, सामाजिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण में प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली को जान पायेंगे।

18.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास की सिद्धता सांस्कृतिक, सामाजिक, सौन्दर्यशास्त्रीय निष्ठता में ही है जो पानक रस के समान आस्वाद्यमान है जो सत्व के उद्रेक से होने वाली प्रकाशात्मिका तथा आनन्दात्मिका अनुभूति मात्र है। यह स्वतः सिद्ध है कि कालिदास निसर्ग से समरस थे, अतः उनके ग्रंथों में निसर्ग अथवा प्रकृति का वर्णन अनुपम हो उठा है। उनकी रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वाचिक, नेपथ्य और स्वभावज आदि तीनों प्रकार के रस पाये जाते हैं। उनका यह भी वैशिष्ट्य है कि वे मनुष्य की भूमिका का निर्वहन करते हुए सामाजिक की सभी प्रकार की वासनात्मक धाराओं का सुन्दर एवं सूक्ष्म रूप से वर्णन किया है जिसका अनुशीलन करते हुए पाठक तल्लीन होकर काव्य के उस परम प्रयोजन '**सद्यः परनिर्वत्ति**' का अनुभव करने लगता है। अर्थात् यह आनन्द ही आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। जिसकी प्राप्ति के लिए सारा संसार प्रयत्नशील है। इस प्रकार खण्ड–4 इकाई–18 में अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित सामाजिक, सौन्दर्यशास्त्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण का वर्णन किया जायेगा।

18.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सांस्कृतिक दृष्टिकोण

महाकवि कालिदास का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ अनुराग अभिज्ञानशाकुन्तलम् में स्थान–स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है। अभिज्ञानशाकुन्तलम में कण्व के उपदेश महाकवि कालिदास के अपने उद्‌गार है। महाकवि कालिदास के अनुसार वधू में निम्न श्लोक विशेषता का होना आवश्यक बताया है–

''शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने

भर्तृविप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीतं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।''

(अभिज्ञानशाकुन्तल, 4/18)

कन्या के बान्धव अपने जामाता से यहीं चाहते हैं कि वह उनकी कन्या को कम से कम अपनी अन्य पत्नियों के समान देखें ही। कालिदास के अनुसार अपने पितृगृह में पतिगृह से बार–बार नहीं आना चाहिए। उनके अनुसार कन्या परायी सम्पत्ति है–

अर्थो हि कन्या परकीय एव, तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।

जातो ममायं विशदः प्रकामम्, प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।

इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति में मानव अपने साथ तीन ऋणों को लेकर इस संसार में आता है। पुत्रोत्पत्ति के द्वारा मनुष्य पितृऋण को वेदाध्ययन से ऋषि ऋण को तथा देवाराधना से देव ऋण को अपाकृत करता है इसीलिए कालिदास का दुष्यन्त सन्तानोत्पत्ति के अभाव मे षष्ठांक में अत्यन्त चिन्तित दिखायी देता है क्योंकि राजा जब (पढ़ता है) महाराज को विदित हो कि जलपथोपजीवी कोई धनवृद्धि नामक वणिक नौका डूब जाने के कारण मर गया, उसकी कोई सन्तान नहीं है, उसकी अनेक करोड़ो की सम्पत्ति आज राजा की हो गयी, उसे महाराज सुनकर प्रमाणित करें। (सविषादम्) **'कष्टं खल्वनपत्यता'** अर्थात् दुख के साथ सन्तान के न होने के कारण जीवन अत्यन्त कष्टदायक है। वेत्रवती! महाधनी होने के कारण उसकी अनेक पत्नियों का होना चाहिए, अतएव पता लगाओ कि उसकी कोई पत्नी कहीं गर्भिणी न हो।

अभिज्ञानशाकुन्तल के **'षष्ठांक'** में कालिदास का दुष्यन्त मानव मस्तिष्क पर जन्मान्तरों के संस्कारों को स्वीकारते हुए कहता है–

'रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्,

पर्युत्सको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं,

भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि।।

इसके अतिरिक्त जन्मान्तर में विश्वास करना भारतीय संस्कृति का मूल प्राण है। कालिदास की शकुन्तला स्थान–स्थान पर प्राप्त होने वाले सुख–दुःख का कारण भाग्य को बताती है। इसी तरह महाकवि कालिदास में परोपकार, अतिथि सत्कार तथा वर्णाश्रम धर्म में दृढ़–विश्वास आदि को शाकुन्तल के आधार पर निरुपित किया जा

सकता है।

इसके अतिरिक्त महाकवि कालिदास प्रकृति सुन्दरी के अन्य उपासक है। उनकी शकुन्तला भी प्रकृतिप्रिया रमणी है। महाकवि कालिदास का प्रकृति के प्रति दृढ़ानुराग अभिज्ञानशाकुन्तल में स्थान–स्थान पर परिलक्षित होता है। वन की स्वच्छ एवं सुखद वायु के कारण प्रदेश की सुन्दरता बढ़ गयी है।

कालिदास ने वनों और वृक्षों से मनुष्य का आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित किया है। वन और वृक्ष भाई बन्धु के तुल्य होते हैं। महर्षि कण्व को वन के वृक्ष शकुन्तला से भी अधिक प्रिय हैं और शकुन्तला का वृक्षों पर सहोदर तुल्य स्नेह रहता है। शकुन्तला वृक्षों को जल देती है। 'नवमालिका' का नाम शकुन्तला ने 'वनज्योत्सना' रखा है जो आम्र वृक्ष की स्वयंवर वधू है जो फूल रूपी यौवन से युक्त है और आम के पत्तों से युक्त होने के कारण उसके उपभोग के योग्य दिखाई देती है। वनज्योत्सना पर शकुन्तला का बहन के समान प्रेम है। कालिदास ने वनों को देवता कहकर इनकी मर्यादा और गौरव को प्रतिष्ठित किया है। मानव जीवन के समस्त सुखों में ये वन अभिवृद्धि प्रदान करते हैं। शकुन्तला के पतिगृह जाते समय वन के वृक्ष उसे माङ्गलिक आभूषण प्रदान करते हैं–

''क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं

निष्ठयूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै–

र्दत्तन्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्दिभिः।।''

अर्थात् कुछ वृक्षों ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत माङ्गलिक वस्त्र प्रदान किये, किसी ने पैरों को रंगने के लिए लाक्षा रस प्रकट किया तथा किसी ने वन देवता के करतलों से आभूषण प्रदान किया। कालिदास ने यहाँ पर व्यंजना को प्रस्तुत किया है अर्थात् वनस्पतियों के इस प्रकार के अनुग्रह राजलक्ष्मी के संकेत हैं।

वृक्ष सेवा को कालिदास मानव जीवन का व्रत मानते हैं जिसके संरक्षण और संवर्धन का दायित्व मनुष्य के ऊपर है। इस तथ्य को कालिदास उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याभवत्युत्सवः।

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।

महर्षि कण्व शकुन्तला के पतिगृह जाते समय वन के वृक्षों, लताओं और पक्षियों से उसके जाने की अनुमति माँगते हुए कहते हैं कि–जो शकुन्तला वृक्षों को बिना जल दिए जल नहीं पीती थी। अलंकार प्रिया होने पर भी अत्यधिक प्रेम के कारण वह वृक्षों के नये पत्तों को नहीं तोड़ती थी। प्रथम पुष्पोदगम के समय जो उत्सव मनाती थी, वह शकुन्तला पतिगृह जा रही है। अतः आप सब स्वीकृति दे।

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में मानवीय संवेदनात्मक रूप में भी प्रकृति

का वर्णन किया है। पतिगृह को जाती हुई शकुन्तला को देखकर तपोवन के वृक्ष भी संवेदन का अनुभव करते हैं। हरिणियों ने कुश के ग्रास को भी उगल दिया, मयूरी ने नाचना बन्द कर दिया तथा लताओं ने आँसू के समान पीले पत्तों को त्याग दिया। तथाहि–

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुचन्त्यश्रूणीव इव लताः।।

जिस मृगशावक को शकुन्तला ने पाल–पोसकर बड़ा किया था वह मृगशावक पतिगृह को जाती हुई शकुन्तला को ही देखता रह गया उसने कुशों के ग्रास उगल दिये, मोरों नाचना छोड़ दिया, लताए मानो आंसुओ के रूप में पीले पत्तों को छोड़ रही है।

शकुन्तला के वियोग से दुःखी चक्रवाक अपनी प्रियतमा के साथ बोल न सका वह जाती हुई शकुन्तला को ही देखता रह गया।

पटकिनी पत्रन्तरितां व्याहृतोऽपि न खलु व्याहरति प्रियाम्।

मुख उद्व्यूढ मृणालः त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः।

अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त बालक सर्वदमन की स्वाभाविक निर्भयता को देखते हैं। वह किसी से भी नहीं डरता, सर्वदमन सिंह के बच्चे को बलात् खींच रहा है, तपस्विनी उसको मना कर रही हैं, लेकिन वह नहीं मानता है और हँसता है। बालक को देखकर दुष्यन्त के हृदय में वात्सल्य स्नेह उत्पन्न हो जाता है। अकारण हँसते हुए बालक के दाँत रूपी अंगद्वार उसकी तोतली बोली की मनोहरता, जो गोद में रहने का इच्छुक है, को देखकर दुष्यन्त कहता है कि ऐसे लोग भाग्यवान होते हैं जो बच्चों के शरीर की धूलि से मलिन होते हैं–

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीय वचः प्रवृत्तीन्।

अंकाश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो धन्यास्तदंगरजसा कलुषी भवन्ति।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 7/17 श्लोक)

यहाँ कवि ने उस बालक का स्वाभाविक चित्रण किया है जो गाँवों की धूलि में स्वतन्त्र रूप से खेलता हुआ प्रसन्न चित्त रहता है। दुष्यन्त में भी कवि ने साधारण मानव की सूक्ष्म प्रकृति के स्वाभाविक स्वरूप का आधान कराया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में सानुमती कहती हैं कि–मानव उत्सव प्रेमी होते हैं–**'उत्सव प्रियाः खलु मनुष्याः। अभिज्ञानशाकुन्तल अंक 6 वा. 52)** हमारा भारत उत्सव प्रिय देश है, यहाँ वर्ष का प्रत्येक दिन एक उत्सव ही होता है। कालिदास का उत्सव एक अलग ही महत्व रखता है, जहाँ वनो के वृक्षों एवं लताओं के प्रथम पुष्पोदय पर भी उत्सव मनाया जाता है–**'आद्ये वः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः। (अभिज्ञानशाकुन्तल 4/9)**

कालिदास के समाज में वसन्त महोत्सव विशेष महत्व रखता था, वसन्तोत्सव बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता था। वसन्त के महीने को मधुमास तथा फाल्गुनमास भी कहते हैं। वसन्त ऋतु को महाकवि ने ऋतुओं का मंगल रूप कहा है जिसको प्रसन्न करने के लिए लोग उसको नमस्कार भी करते हैं–

आताम्रहरितपाण्डुर जीवितसर्वं वसन्तमासस्य।

दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमंगल त्वां प्रसादयामि।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 6/2)

वसन्तोत्सव में स्त्रियाँ अपने पति एवं पुत्र के दीर्घायु की कामना करती थीं तथा पति का प्रेम प्राप्त करने के लिए व्रत भी रखती थी। इन उत्सवों में वेश्याएँ भाग लेती थीं तथा अपने ललिताभिनय एवं नृत्य का प्रदर्शन करती थीं। पुत्र जन्म भी एक उत्सव के रूप में मनाया जाता था जिसमें नृत्य–गीत इत्यादि होते थे।

18.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सामाजिक दृष्टिकोण

कालिदास के काव्य ग्रंथों में श्रुति एवं स्मृतियों में प्रतिपादित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वर्णों का वर्णन प्राप्त होता है। साहित्योदय से पूर्व प्रतिष्ठित यह वर्ण व्यवस्था भारतीय सामाजिक एकीकरण की वह प्रक्रिया थी जिसमें मुक्त समाज का निर्माण तथा व्यवसायिक स्वतंत्रता की स्थापना हुई। कालिदास ने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के आधार पर आधारित वर्ण व्यवस्था को उच्च एवं निम्न दृष्टि से नहीं देखा। उनके अनुसार वंशानुगत व्यवसाय प्रत्येक व्यक्ति का धर्म होता है। अतः उसको उसका परित्याग नहीं करना चाहिए।

सहजं किल यद् विनिन्दितं न तु तत्कर्म विवर्जनीयकम्।

पशुमारणकर्मदारूणः अनुकम्पामृदुकोऽपि श्रोत्रियः।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल, 6/1)

अर्थात् निन्दित भी जो कर्म वस्तुतः वंश परम्परागत है उसको नहीं छोड़ना चाहिए (यज्ञ में) पशुहत्यारूपी कर्म से क्रूर वेदपाठी ब्राह्मण भी वस्तुतः दयाभाव से कोमल हृदय वाला होता है। कालिदास के सभी वर्ण अपने कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए सामाजिक विकास एवं राष्ट्रीय विकास में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। ब्राह्मण अध्ययन–अध्यापन तथा यज्ञ आदि के द्वारा लोकमङ्गल करता है, क्षत्रिय राज्य तथा लोक रक्षा का उत्तरदायित्व पूर्णनिष्ठा के साथ निर्वाह करता है। वैश्य आर्थिक समृद्धि के लिए यत्न करता है तो शूद्र समाज की सेवा द्वारा अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। उनके द्वारा वर्ण धर्म का कहीं पर उल्लघंन नहीं किया जाता है। आधुनिक युग अस्तित्व के लिए संघर्ष और योग्यतम की जीत के सिद्धांत पर आधारित है परन्तु कालिदास के समय में ऐसी अवस्था नहीं थी। यहाँ सबको अस्तित्व प्राप्त था और सभी की अपनी योग्यता होती थी। ब्राह्मण वर्ण एक ऐसा वर्ण था जिसने लोकहित एवं सृष्टि हित में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित किया हुआ था। कालिदास ने इस रूप में, वशिष्ठ, वाल्मीकि, कण्व, मारीच आदि ऋषियों का उल्लेख किया है। ब्राह्मण अपने श्रेष्ठ एवं पवित्र आचरण के कारण ही सभी वर्गों के द्वारा सम्मान पद को प्राप्त थे। कालिदास ने 'वशिष्ठ के लिए ब्रह्मवर्चसम्' शब्द का प्रयोग किया है जिससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण की अन्तर्निहितपवित्रता एवं लोकमंगल करने की शक्ति ही ब्रह्मतेज थी– **यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम्।। (रघुवंश, 1/63)**

कालिदास ने ब्राह्मण के नियम और संयम को ही उसका धन कहा है–

विचिन्त्यन्ती यमनन्यमानसा

तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4/1 श्लोक)

अस्मान् साधु विचिन्त्य, संयमधनानुच्चैः कुलं कुतम्।

(अभिज्ञानशाकुन्तल 4/17 श्लोक)

कालिदास का क्षत्रिय वर्ण भी ब्राह्मण वर्ण के सदृश सामाजिक उत्थान एवं प्रगति का प्रमुख कारक था। जिसके उस पर समाज की रक्षा एवं देश की सुरक्षा जैसे कठिन कार्य का उत्तरदायित्व था।

''प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते शान्तमना विविक्तम्।

यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्दः।।''

(अभिज्ञानशाकुन्तल 6/5 श्लोक)

कालिदास ने जिस वैश्य वर्ण की चर्चा की है वह अत्यन्त ही समृद्ध तथा बुद्धिमान था। वैश्य राष्ट्रीय समृद्धि की वृद्धि के प्रमुख हेतु थे। वे अपने वाणिज्य–व्यापार हेतु समुद्र पार दूसरे देशों में जाते देखे जाते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रतिहारी दुष्यन्त को एक पत्र देती है जिसमें लिखा होता है कि समुद्र के द्वारा व्यापार करने वाला धनमित्र नामक प्रमुख वणिक जहाज टूट जाने से मृत्यु को प्राप्त हो गया–

''समुद्रव्यवहरी सार्थवाहो धनमित्रे नाम नौव्यसनेनिपन्नः।''

(अभिज्ञानशाकुन्तल अंक 6)

इससे यह स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि देशी तथा विदेशी वाणिज्य कालिदास के समय में भारतीय वणिकों की व्यस्त चिन्ता थी वे समुद्र यात्रा में जाते थे और समुद्र की सारी आपत्तियों को साहसपूर्वक झेलते थे। राजा लोग व्यापारियों के स्थल मार्ग एवं समुद्र मार्ग में उनकी सुरक्षा हेतु उचित प्रबन्ध करते थे। कालिदास की वर्ण व्यवस्था में शूद्रों को भी प्रजा सेवा तथा राष्ट्र सेवा के आधार पर एक उचित स्थान दिया गया था। वर्णगत आधार पर श्रम तथा व्यवसाय का जो बंटवारा था उसमें किसी अन्य वर्ण का हस्तक्षेप नहीं था। शूद्र भी अपने निर्धारित व्यवसाय से प्रसन्न था और अपने परिवार का भरण–पोषण करता था। शूद्र अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदार था, जिसके फल स्वरूप राजा एवं समाज के द्वारा वह भी प्रशंसित था। अभिज्ञानशाकुन्तल में धीवर राजचिन्हित अंगूठी को वापस करता है तो दुष्यन्त उसे अंगूठी के समान मूल्य में उपहार प्रदान करते हैं–

एष भर्त्रङ्गुऽलीयक मूल्यसम्मितः प्रसादोऽपिदापितः।

(अभिज्ञानशाकुन्तल अंक 6)

कालिदास ने राजा के प्रति इसे ही सच्ची सेवा कहा है।

इस प्रकार कालिदास का वर्णों की सेवा से तात्पर्य अपने कर्तव्य एवं कार्य के प्रति सच्ची निष्ठा तथा ईमानदारी है। वर्णधर्म का उल्लंघन करने से प्रजा में पाप फैलता

है। अतः वर्णधर्म का उल्लघन अर्थात् दोष न आये इसका दायित्व राजा पर था। उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य समुपस्थित होता है कि कालिदास ने वर्ण व्यवस्था को स्वस्थ समाज के निर्माण तथा उसके विकास में आवश्यक माना है। उसकी वैज्ञानिकता यह है कि मनुष्य अपने व्यवसाय और सहजता एवं निर्भीकतापूर्वक अपना सकता है। वर्ण व्यवस्था के पीछे मानव प्रवृत्तियों की स्पष्ट झलक मिलती है। कालिदास के वर्णों में व्यवसायगत संघर्ष की दृष्टि नहीं पायी जाती है। कालिदास ने वर्णगत व्यवसाय को ऊँच–नीच दृष्टि से देखने वालों की कड़ी निन्दा की है तथा वे जातिगत विचार से भी रुष्ट नजर आते हैं। उनके विचार से कोई भी अपने कर्म से ऊँच–नीच नहीं होता है। यदि ऐसा होता तो ब्राह्मण यज्ञगत हिंसा के कारण सबसे नीच और क्रूर होता, परन्तु ऐसा नहीं है– **'किमस्माभिर्जातिः पृष्टाः' (अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 6)**

इस कथन के द्वारा कालिदास ने जातिगत आधार पर व्यवहार करने वालों की निन्दा की है। कालिदास ने वर्ण व्यवस्था के उच्चादर्शों को तथा उसके अन्तर्हित मूल भावना को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। कालिदास की वर्णसम्बन्धी मान्यता आधुनिक युग में अत्यन्त ही प्रासङ्गिक तथा आत्मसात् के योग्य है। जिसमें मानव की दो प्रवृत्तियों स्वार्थ और परमार्थ में भी समन्वय करने का प्रयास किया गया है। इसी आधार पर आदर्श राम राज्य की कल्पना की गयी है। कालिदास द्वारा वर्णित वर्ण व्यवस्था व्यक्तिगत की अपेक्षा समष्टिगत उद्देश्य को लक्ष्य करती है जिसका फल त्याग, तपस्या और प्रेम हैं। आधुनिक युग में समाज में देखी गयी जातिगत विसंगतियाँ, असंतोष, असहिष्णुता आदि कालिदास के समाज में लेशमात्र भी नहीं थी। कालिदास का समाज सर्वधर्म समभाव पर आधरित तथा आदर्शपरक है जो **'रामादिवद्वर्तितव्यं न तु रावणादिवद्'** का संदेश देता है। इस प्रकार कालिदास के वर्णव्यवस्था सम्बन्धी विचार उदात्त कोटि के हैं। जो कालान्तर में भी पुरातन नहीं प्रतीत होते हैं।

आश्रमव्यवस्था–मानव जीवन के प्रति कालिदास का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक एवं सर्वाङगीण है। कवि ने आश्रम व्यवस्था का जो स्वरूप प्रस्तुत किया वह एक प्रतिबद्ध सामाजिक मूल्यों पर प्रतिष्ठित है। कालिदास ने बदलते हुए सामाजिक मूल्यों एवं परिस्थितियों को परखा तथा आश्रम के उस स्वरूप को प्रस्तुत किया जिसका पालन किसी भी परिस्थिति में सम्भव हो सके। कालिदास के चारों आश्रम मानव जीवन के चार पुरुषार्थों की सिद्धि में पूर्ण सहायक हैं। कालिदास ने चार वर्णव्यवस्था के साथ ही चार आश्रमों का भी उल्लेख किया है। चतुराश्रम पालन कालिदास के चरित्र नायकों की प्रधान विशेषता रही है। जिसके द्वारा कालिदास ने एक ऐसे समाज के निर्माण की संकल्पना की है, जिसके संचालक स्वयं विष्णु होते हैं, जिसका समाज स्वर्ग लोक के समान सुन्दर तथा सुखी होता है। ये चार आश्रम, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास है जिनका उल्लेख श्रुति एवं स्मृति ग्रंथों में भी यथावत् प्रतिपादित है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त जब कण्वाश्रम में प्रवेश करते हैं तो उससे पूर्व अपनी सेना को बाहर ही रोक देते हैं तथा अपने परिधान को आश्रम के अनुकूल धरण कर लेते हैं–**सूत विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। (अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अंक)**

कालिदास का गृहस्थ सम्बन्धी विचार गार्हस्थ्य सम्बन्धी उदात्तता को प्रकट करता है। कालिदास ने स्त्रियों को गार्हस्थ्य धर्म का सुन्दर उपदेश शकुन्तला के पतिगृह जाते समय कण्व ने दिया है–**''शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने**

भर्तृविप्रकृतापि रोषणतया मा स्मप्रतीतं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी

यान्त्येवं गृहिणी पदं युक्तयो वामा कुलस्याधयः।।''

(अभिज्ञानशाकुन्तल, 4/18)

अर्थात् तुम यहाँ से पतिगृह पहुँचकर गुरुजनों की सेवा करना, अपना सपत्नियों से प्रिय सखी जैसा व्यवहार करना, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के आवेश में पति के प्रतिकूल कार्य मत करना, अपने आश्रितों पर अत्यन्त उदार रहना, अपने ऐश्वर्य का अभिमान मत करना, इस प्रकार आचरण करने वाली स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी के पद पर प्रतिष्ठित होती हैं और इसके विपरीत चलने वाली कुल के लिए अभिशाप होती हैं।

कालिदास का गृहस्थ धर्म का यह उपदेश आज भी उतना ही प्रेरक तथा प्रासङ्गिक है जितना कि उस काल में। कालिदास के अनुसार जो गृहस्थाश्रम के समस्त कर्तव्य कर्मों से मुक्त हो जाता है वही वानप्रस्थ का सच्चा अधिकारी होता है। गृहस्थ पुत्रोत्पन्न करके उसे यथायोग्य बना दे कि वह परिवार का निर्वहन कर सके तब गृहस्थ को वानप्रस्थ के नियमों का आचरण करना चाहिए। शकुन्तला का पतिगृह जाते समय कण्व का यह कथन वानप्रस्थाश्रम का ही निर्देश करता है–

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी

दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।

भर्ता तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं

शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल, 4/20)

कालिदास ने वानप्रस्थी के लिए तप, संयम, दया, प्रेम आदि उदात्त भावों का विकास आवश्यक माना है। वानप्रस्थी वल्कल वसन धारण करता है। स्त्रियाँ भी वल्कल वसन धारण करती हैं। शकुन्तला कण्वाश्रम में रहते हुए वल्कल वसन धारण करती है–

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे

स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।

वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां

कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल, 1/19)

वानप्रस्थ के माध्यम से कालिदास ने यह संकेत दिया है कि भारतीय जीवन तपोवन के शान्त वातावरण में पुष्पित और पल्लवित होता है जो त्याग, तपस्या एवं प्राणीमात्र के प्रति मैत्री तथा सरल सहजानुभूति का उपदेश देता है। आधुनिक युग में उसकी प्रासङ्गिकता सर्वत्र एवं शाश्वत है, जहाँ मनुष्य भौतिकवाद की अन्धाधुंध दौड़ में शामिल हो गया है।

वानप्रस्थ की सहज परिणति ही सन्यास आश्रम है। यह मानव जीवन का चौथा विश्राम होता है। इसके द्वारा अन्तिम पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। सन्यांस में व्यक्ति योग के

द्वारा मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। सन्यास में मनुष्य समस्त सांसारिक विषयों का त्याग कर देता है। गीता में भगवान वासुदेव ने कहा है–

''काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यास कवयो विदुः।''

(गीता, 18/2 श्लोक)

कालिदास कालीन समाज में स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता था, कालिदास के सभी स्त्रीपात्र सुशिक्षित हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला, अनुसूया, प्रियंवदा शिक्षित स्त्रियाँ हैं जिनको कण्व ने शिक्षा दी थी।

कालिदास बाल विवाह के खिलाफ थे। कालिदास ने आम समाज की मान्यता को ही मान्यता प्रदान की। जिसकी सबसे बडा उदाहरण शकुन्तला है। कन्या का विवाह उसी समय होता था जब वह अपनी परिपक्वावस्था को प्राप्त कर लेती थी। विवाह एक अनिवार्य संस्कार था। स्त्री का धर्म विवाह संस्कार के बाद ही आरम्भ होता है। शकुन्तला को प्रकृति की माता के रूप में चित्रित किया गया है। जो बाद में सर्वदमन की माता के रूप दिखाई देती है।

18.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण

कालिदास अनलंकृत सौन्दर्य के उपासक हैं। पवित्र तपोवन में तपस्वी कन्याओं के मध्य अलौकिक रूप सम्पन्न शकुन्तला को देखकर कवि कह उठता है–**'दूरीकृताः खलु गुणैरूद्यानलता वनलताभिः'** वस्तुतः रमणीयता सभी अवस्थाओं में रमणीय ही होती है। उसे मण्डन की आवश्यकता नहीं है। आचार्य विश्वनाथ कहते हैं–**'सर्वावस्था विशेषेषु माधुर्यं रमणीयता'** कालिदास की शकुन्तला भी कुछ ऐसी ही है भले ही उसने वल्कल पहने हो पर वो वल्कल उसकी मनोहरता को कई गुना अधिक बढ़ा रहे हैं। कालिदास ने केवल शारीरिक सौन्दर्य को ही सब कुछ नहीं माना। शारीरिक सौन्दर्य व्यर्थ और अनाकर्षक बन जाता है, यदि उसके साथ ही साथ मानसिक सौन्दर्य भी न हो। यदि शकुन्तला शारीरिक दृष्टि से तो सुन्दर होती, परन्तु स्वभाव से कुटिल, इर्ष्यालु या कटुभाषिणी होती, तो वह कालिदास की नायिका न बन पाती। कालिदास ने शरीर–सौन्दर्य को मानसिक सौन्दर्य के साथ मिलाकर अद्भुत लावण्य–सृष्टि की है। उनकी शकुन्तला तपोवन में रही है, इसलिए नगरों में होने वाले छल–प्रपंचों से वह अपरिचित है। स्नेह उसके मन में लबालब भरा है। आश्रम के पौधों और बेलों को बिना सींचे वह स्वयं पानी भी नहीं पीती। आश्रम के मृग उसके साथ खूब परिचित हैं और उससे वह भाई–बहिन का सा और यहाँ तक कि पुत्र का सा प्रेम करती है। उसकी प्रियंवदा और अनसूया सखियाँ उसके समान ही सरल और मधुर स्वभाव की हैं। दूसरों के कष्टों को कम करना ही जैसे इनके जीवन का एकमात्र कार्य है। दूसरे को दुःख देना या सताना आश्रम के नियमों के प्रतिकूल है। इस सरलता, मधुरता, सेवा और स्नेह की वृत्ति ने शकुन्तला को एक विलक्षण आन्तरिक सौन्दर्य प्रदान किया है, जो उसके अनुपम बाह्य सौन्दर्य से भी बढ़कर है।

महाकवि कालिदास भी मानव मन के इस आकर्षण से अछूते नहीं रहे। उन्होंने भी अपने काव्यों में प्राकृतिक उपादानों के मनोज्ञ वर्णन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। और उनके अभिज्ञानशाकुन्तल की शकुन्तला तो एक प्रकृति सुन्दरी है। तपोवन के पावन प्राङ्गण में पाली शकुन्तला के अङ्गप्रत्यङ्ग कोमलतम है उसकी समस्त चेष्टाएँ सहृदयहृदयावर्जक हैं। शकुन्तला के तत् तत् अवयवों का वर्णन करते हुए उन्होंने

प्राकृतिक उपादानों का मनोज्ञ सन्निवेश किया है। उदाहरणार्थ–

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम्।।
(अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/2)

अर्थात् इस श्लोक में शकुन्तला की लता से तुलना की गई है। शकुन्तला का वर्णन अति सुन्दर है। अधर नवपल्लव तुल्य हैं, दोनों बाहु पतली शाखाओं के तुल्य हैं, अंगों में फूलों सा मनोहर यौवन का सौन्दर्य है।

वे जब शकुन्तला के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन करते हैं तो कहते हैं–

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै,

रनामुक्तं रत्नं मधु नवमनास्वादित रसम्।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,

न जाने भोक्तारं कमिह समुपास्थास्यति भुवि।।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2/11

अर्थात् उसका निष्कलंक सौन्दर्य किसी के भी द्वारा अभी तक न सूंघा गया फूल है, नाखूनों से न कटा हुआ कोमल–पत्ता (कोंपल) है, न विंधा हुआ रत्न है, जिसके रस का आस्वादन नहीं किया गया। ऐसा नया मधु है और पुष्पों का अखण्डित फल सा है। पता नहीं, परमात्मा किसको उसका उपभोक्ता बनाएगा।

सौन्दर्य की सृष्टि केवल सौषम्य से ही नहीं होती, अपितु कभी–कभी वैषम्य से भी वस्तु या व्यक्ति में जिस सौन्दर्य का आधान हो जाता है वह अनूठा ही होता है। शैवाल में उलझे हुए कमल, कलंक में निमग्न चन्द्रमा की कला तथा वल्कल पहने युवती की सुन्दरता के घटने का प्रश्न ही नहीं उठता, वह तो सहस्रगुणा अधिक वृद्धि को प्राप्त कर प्रेक्षकों के मन को आवर्जित करती हैं–

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपिहिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।

शेवाल (सेवार, काई) से घिरा हुआ भी कमल मनोहर लगता है। काला कलंक भी चन्द्रमा की शोभा को बढ़ाता है। यह कृशांगी (शकुन्तला) वल्कल वस्त्रों से भी अति सुन्दर प्रतीत होती है, क्योंकि सुन्दर आकृतियों के लिए क्या वस्तु अलंकार नहीं होती है?

कालिदास इस बात का संकेत देना चाहते है कि प्रकृति प्रदत्त सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य होता है। और यह स्वाभाविक सौन्दर्य ही मनोहर होता है। इसकी सुन्दरता की वृद्धि साम्यता और विषमता दोनों के ही योग से होती है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में नारी को विधता की अपनी–**'नास्ति परा तद्वद् उत्कृष्टा यस्याः सा'** अर्थात् सर्वातिशायिनी रचना कहा है जिसे बनाने में ब्रह्मा ने हाथ नहीं लगाया अपितु पूर्वरचित पदार्थो में से उत्तमोत्तम का चयन मन में कर उसमें ही प्राण फूँक दिये और वही नारी हो गयी। उसके शरीर की बनावट को देख कर ही ऐसा सोचना पड़ता

है तथा प्रकृति की कारयित्री क्षमता की भी तो कोई सीमा नहीं।

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्वयोगा

रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।

स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे

धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।

अर्थात् विधाता की सर्वशक्तिमत्ता और उसके शरीर पर विचार करके मुझे यह विधाता के द्वारा चित्र बनाकर, उसमें जीवन–संचार करके, मन से ही मानो सौन्दर्य समूह से बनाई गई विलक्षण स्त्री रत्न प्रतीत होती है।

मेरे कवि का सौन्दर्य दिव्य लोक द्वारा इस पृथ्वी को दिया हुआ उपहार है क्योंकि यह दिव्यता पृथ्वी में सम्भव नहीं है। प्रभा तरल ज्योति पृथ्वी से उदय नहीं होती–

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।

न प्रभातरलं ज्योतिरूदेति वसुधातलात्।। 1/28

कालिदास प्रसंग के अनुसार कहीं तो विस्तृत वर्णन द्वारा भाव को जाग्रत करते हैं और कहीं बहुत ही संक्षिप्त रूप में उसे व्यंजना शक्ति से ही प्रकट कर देते हैं। जैसे शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त कहते हैं, अहा! आँखों को चैन पड़ गया है। इस एक वाक्य से ही आँखों को शीतल कर देने वाले शकुन्तला के मनोहारी रूप का स्पष्ट आभास पाठक को हो जाता है। इसी प्रकार दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेमालाप भी कालिदास ने संक्षिप्त ही रखा है। किन्तु भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसे संक्षिप्त नहीं कहा जा सकता। जब दुष्यन्त तपोवन से विदा लेकर अपनी राजधानी में लौट आए और उन्होंने शकुन्तला की कोई खबर नहीं ली , तो उस प्रसंग में विरह–व्यथा को प्रकट करने के लिए बहुत कुछ लिखा जा सकता था या शकुन्तला के मुख से कहलवाया जा सकता था परन्तु कालिदास ने इसके लिए कुछ भी उद्योग नहीं किया। केवल दुर्वासा के आगमन और शकुन्तला के दुष्यन्त के ध्यान में मग्न होने के कारण उनकी अवहेलना द्वारा ही शकुन्तला की करुणाजनक मनोदशा की झाँकी दे दी। इसी प्रकार पतिगह को जाते समय शकुन्तला की व्यथा तथा कण्व और सखियों का स्नेह बहुत ही संक्षिप्त व्यंजनाओं में प्रकट हुआ है। जब दुष्यन्त की राजसभा में राजा ने शकुन्तला को निरादरपूर्वक त्याग दिया, उस समय शकुन्तला के विभिन्न मनोभाव भय, लज्जा, अभिमान, अनुनय, भर्त्सना और विलाप सभी कुछ कवि ने चित्रित किए हैं। परन्तु उनके लिए शब्द बहुत ही परिमित व्यय किए गए हैं। जिस शकुन्तला ने विश्वास के साथ सरल भाव से अपने–आपको दुष्यन्त को समर्पित कर दिया था , वह ऐसे दारुण अपमान के समय अपनी सलज्ज मर्यादा की रक्षा कैसे करेगी, यह एकाएक पाठक के लिए कल्पना कर पाना सम्भव नहीं होता। परन्तु कालिदास ने इस परिस्थिति का निर्वाह महाकवि की कुशलता के साथ किया है। इस परित्याग के उपरान्त की नीरवता और भी अधिक व्यापक, गम्भीर और प्रभावशालिनी है। इतनी बड़ी दुर्घटना हो जाने पर भी कण्व मूक रहते हैं, प्रियंवदा और अनसूया सी स्नेहमयी सखियाँ क्या करती हैं, कुछ पता नहीं चलता। कण्वाश्रम की वन देवलताएँ भी निश्चेष्ट हैं और स्वयं शकुन्तला भी मानो नीरवता की मूर्ति सी बनकर रह जाती है। हृदय की भावनाओं को जगाने के लिए ऐसी नीरव निश्चेष्टता का प्रयोग हमें अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं पड़ता।

बोध/अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न–1

क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही ((√)) का चिन्ह लगाइयें

i) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कितने प्रकार की वर्णव्यवस्था की थी (4/7)

ii) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कितने प्रकार की आश्रमव्यवस्था है? (8/4)

iii) 'अर्थो हि कन्या परकीय एव' किसकी उक्ति है? (कण्व/दुष्यन्त)

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) शकुन्तला पुत्री .....थी। (मेनका/कण्व)

ii) दुष्यन्त ने शकुन्तला से .....विवाह किया था। (गान्धर्व/राक्षस)

iii) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला ने नवमालिका का नाम.....रखा हैं। (ज्योत्सना/मालिनी)

बोध प्रश्न–2

क. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सांस्कृतिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

ख. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण पर निबन्ध लिखिए।

18.5 सारांश

'अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित सामाजिक, सौन्दर्यशास्त्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण' इस इकाई में सामाजिक दृष्टिकोण के अर्न्तगत कालिदास ने समाज के वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था, स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा एवं बालविवाह का विरोध इत्यादि का वर्णन किया जिसका आपने अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त सौन्दयशास्त्रीय दृष्टिकोण के अर्न्तगत कालिदास ने शकुन्तला को प्रकृति सुन्दरी तथा उसके शारीरिक सौन्दर्य के साथ मानसिक सौन्दर्य एवं ह्रदय सौन्दर्य का वर्णन किया है। आश्रम के वनस्पतियों एवं प्राणियों के साथ जो प्रेम सौन्दर्य का वर्णन किया है वह अद्‌भुत है। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक दृष्टिकोण के अर्न्तगत महाकवि कालिदास ने वधू के अन्दर विशेषताएँ, कन्या को पराई सम्पत्ति, जन्म–जन्मान्तरों में विश्वास, प्रकृति के प्रति दृढ़ अनुराग तथा इन्होंने मानवीय संवेदनात्मक रूप में भी प्रकृति का तथा लोग उत्सवप्रिय होते थे, इत्यादि वर्णन किया है। इन्हें आपने आत्मसात कर लिया होगा।

18.6 शब्दावली

अभिवृद्धि	–	विशेष वृद्धि
मांगलिक	–	शुभ
संरक्षण	–	विशेष रक्षा करना
संर्वधन	–	वर्धन करना / बढ़ाना / पोषित करना
सहजता	–	सरलरूप से
वल्कल	–	जटाजूट

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तके

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र व्याख्या. व्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973
- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुक नाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय, चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2007
- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वर नाथ मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979

- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद् काशी वि. सं. 2007
- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,
- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

ENGLISH REFERENCE

(1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored Aspects of the Rasa Theory,**vidyanidhi Prakashan, ed.1906

(2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**.,Firma KLM PVT Ltd. Calcutta,1976.

(3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta;** Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1968

(4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**,MLBD,Delhi,f.ed. 1961

(5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928

(6) V.Raghvan, **The Number of Rasas,** University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940

(7) V.Raghvan,**Some Concepts of Alankar Shastras**, Adyar Library, Adyar, 1942

18.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

क) (i) 4 (ii) 4 (iii) कण्व

ख) (i) मेनका (ii) गान्धर्व (iii) ज्योत्सना

बोध प्रश्न–2

क) महाकवि कालिदास का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ अनुराग अभिज्ञान शाकुन्तलम् में स्थान–स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है। शाकुन्तलम के कण्व के उपदेश महाकवि कालिदास के अपने उद्गार है। महाकवि के अनुसार वधू में निम्न श्लोक विशेषता का होना आवश्यक बताया है–

''शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने

भर्तृविप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीतं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।''

(अभिज्ञानशाकुन्तल, 4/18)

कन्या के बान्धव अपने जामाता से यहीं चाहते हैं कि वह उनकी कन्या को कम से कम अपनी अन्य पत्नियों के समान देखें ही। कालिदास के अनुसार अपने पितृगृह में पतिगृह से बार–बार नहीं आना चाहिए। उनके अनुसार कन्या परायी सम्पत्ति है–

अर्थो हि कन्या परकीय एव, तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।

जातो ममायं विशदः प्रकामम्, प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।

ख) कालिदास के काव्य ग्रंथों में श्रुति एवं स्मृति द्वारा प्रतिपादित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वर्णों का वर्णन प्राप्त होता है। साहित्योदय से पूर्व प्रतिष्ठित यह वर्ण व्यवस्था भारतीय सामाजिक एकीकरण की वह प्रक्रिया थी जिसमें मुक्त समाज का निर्माण तथा व्यवसायिक स्वतंत्रता की स्थापना हुई। कालिदास ने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के आधार पर आधरित वर्णव्यवस्था को उच्च एवं निम्न दृष्टि से नहीं देखा। उनके अनुसार वंशानुगत व्यवसाय प्रत्येक व्यक्ति का धर्म होता है। अतः उसको उसका परित्याग नहीं करना चाहिए।

सहजं किल यद् विनिन्दितं न तु तत्कर्म विवर्जनीयकम्।

पशुमारणकर्मदारूणः अनुकम्पामृदुकोऽपि श्रोत्रियः।।

(अभिज्ञानशाकुन्तल, 6/1)

अर्थात् निन्दित भी जो कर्म वस्तुतः वंश परम्परागत है उसको नहीं छोड़ना चाहिए (यज्ञ में) पशुहत्यारूपी कर्म से क्रूर वेदपाठी ब्राह्मण भी वस्तुतः दयाभाव से कोमल हृदय वाला होता है। कालिदास के सभी वर्ण अपने कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए सामाजिक विकास एवं राष्ट्रीय विकास में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। ब्राह्मण अध्ययन–अध्यापन तथा यज्ञ आदि के द्वारा लोकमङ्गल करता है, क्षत्रिय राज्य तथा लोक रक्षा का उत्तरदायित्व पूर्णनिष्ठा के साथ निर्वाह करता है। वैश्य आर्थिक समृद्धि के लिए यत्न करता है तो शूद्र समाज की सेवा द्वारा अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। उनके द्वारा वर्ण धर्म का कहीं पर उल्लघंन नहीं किया जाता है। आधुनिक युग अस्तित्व के लिए संघर्ष और योग्यतम की जीत के सिद्धांत पर आधारित है परन्तु कालिदास के समय में ऐसी अवस्था नहीं थी। यहाँ सबको अस्तित्व प्राप्त था और सभी की अपनी योग्यता होती थी।

अभ्यास प्रश्न–

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।